कार्थवृत्तिविरोधात् । नाविरोधः, पदानामेकत्वापत्तेरिति । नानार्थस्य भावः नानार्थता तां समभिरूढत्वात्समभिरूढः ।

एवं भेदे भवनादेवम्भूतः[1] । न पदानां समासोऽस्ति, भिन्नकालवर्तिनां भिन्नार्थवर्तिनां चैकत्वविरोधात् । न परस्परव्यपेक्षाप्यस्ति, वर्णार्थसंख्याकालादिभिर्भिन्नानां पदानां भिन्नपदापेक्षायोगात् । ततो न वाक्यमप्यस्तीति सिद्धम् । ततः पदमेकमेकार्थस्य वाचकमित्यध्यवसायः एवंभूतनयः[2] । एतस्मिन्नये एको गोशब्दो नानार्थे न वर्तते, एकस्यैकस्वभावस्य बहुषु वृत्तिविरोधात् । पदगतवर्णभेदाद्वाच्यभेदस्याध्यवसायकोऽप्ये-

---

विरोध आता है । यदि यह कहा जाय भिन्न पदोंकी एक पदार्थमें वृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता, तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा होने पर समस्त पदोंमें एकत्वकी आपत्ति आती है । इससे यह तात्पर्य निकला कि जो नय शब्दभेदसे अर्थमें भेद स्वीकार करता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं । नाना पदार्थोंके भाव अर्थात् विशेषताको नानार्थता कहते हैं और उस नानार्थताके प्रति जो अभिरूढ़ है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं ।

एवंभेद अर्थात् जिस शब्दका जो वाच्य है वह तद्रूप क्रियासे परिणत समयमें ही पाया जाता है । उसे जो विषय करता है उसे एवंभूत नय कहते हैं । इस नयकी दृष्टिमें पदोंका समास नहीं हो सकता है, क्योंकि, भिन्न भिन्न कालवर्ती और भिन्न भिन्न अर्थवाले शब्दोंमें एकपनेका विरोध है । इसीतरह शब्दोंमें परस्पर सापेक्षता भी नहीं है, क्योंकि, वर्ण, अर्थ, संख्या और कालादिकके भेदसे भेदको प्राप्त हुए पदोंके दूसरे पदोंकी अपेक्षा नहीं बन सकती है । जब कि एक पद दूसरे पदकी अपेक्षा नहीं रखता है तो इस नयकी दृष्टिमें वाक्य भी नहीं बन सकता

---

१. येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवंभूतः । स. सि. १, ३३. त. रा. वा. १, ३३. तत्क्रियापरिणामोऽर्थस्तथैवेति विनिश्चयात् । एवंभूतेन नीयेत क्रियान्तरपराङ्मुखः । त. श्लो. वा. १, ३३, ७५. एवमित्थं विवक्षितक्रियापरिणामप्रकारेण भूतं परिणतमर्थं योऽभिप्रेति स एवम्भूतो नयः । (क्रियाश्रयेण भेदप्ररूपणमित्थम्भावोऽत्र । टिप्पणी) प्र. क. मा. पृ. २०६. एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेवंभूतोऽभिमन्यते ॥ स. त. टी. पृ. ३१४.

२. एवंभवनादेवंभूतः । अस्मिन्नये न पदानां समासोऽस्ति स्वरूपतः कालभेदेन च भिन्नानामेकत्वविरोधात् । न पदानामेककालवृत्तिः समासः क्रमोत्पन्नानां क्षणक्षयिणां तदनुपपत्तेः । नैकार्थे वृत्तिः समासः, भिन्नपदानामेकार्थे वृत्त्यनुपपत्तेः । न वर्णसमासोऽप्यस्ति, तत्रापि पदसमासोक्तदोषप्रसंगात् । तत एक एव वर्णः एकार्थवाचक इति पदगतवर्णमात्रार्थः एकार्थः इत्येवंभूताभिप्रायवान् एवंभूतनयः । जयध. अ. पृ. २९. यत्क्रियाविशिष्टशब्देनोच्यते, तामेव क्रियां कुर्वद्वस्त्वेवंभूतमुच्यते । एवंशब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिकः प्रकारः, तमेवंभूतं प्राप्तमिति कृत्वा ततश्चैवंभूतवस्तुप्रतिपादको नयोऽप्युपचारादेवंभूतः । अथवा एवंशब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिकः प्रकारः, तद्विशिष्टस्यैव वस्तुनोऽभ्युपगमात्तमेवंभूतः प्राप्त एवंभूत इत्युपचारमन्तरेणापि व्याख्यायते स एवंभूतो नयः । अ. रा. कोष. (एवंभूअ).

वम्भूतः, एवम्भेदे[1] समुत्पन्नत्वात् । एवमेते संक्षेपेण नयाः सप्तविधाः, अवान्तरभेदेन पुनरसंख्येयाः । एते च पुनर्व्यवहर्तृभिरवश्यमवगन्तव्याः, अन्यथार्थप्रतिपादनावगमानुपपत्तेः । उक्तं च—

णत्थि णएहि विहूणं सुत्तं अत्थो व्व जिणवरमदम्हि ।
तो णय-वादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति[2] ॥ ६८ ॥
तम्हा अहिगय-सुत्तेण अत्थ-संपायणम्हि जइयव्वं ।
अत्थ-गई वि य णय-वाद-गहण-लीणा दुरहियम्मा[3] ॥ ६९ ॥

एवं णय-परूवणा गदा । अणुगमं वत्तइस्सामो—

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीव-समासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति ॥ २ ॥

है यह बात सिद्ध हो जाती है। इसलिये एक पद एक ही अर्थका वाचक होता है। इस प्रकारके विषय करनेवाले नयको एवंभूतनय कहते हैं। इस नयकी दृष्टिमें एक गो शब्द नाना अर्थोंमें नहीं रहता है, क्योंकि, एकस्वभाववाले एक पदका अनेक अर्थोंमें रहना विरुद्ध है। तथा पदमें रहनेवाले वर्णोंके भेदसे वाच्यभेदका निश्चय करानेवाला भी एवंभूतनय है, क्योंकि, यह नय इसप्रकारके भेदमें उत्पन्न हुआ है। इस तरह ये नय संक्षेपसे सात प्रकारके और अवान्तर भेदोंसे असंख्यात प्रकारके समझना चाहिये। व्यवहारकुशल लोगोंको इन नयोंका स्वरूप अवश्य समझ लेना चाहिये। अन्यथा, अर्थात् नयोंके स्वरूपको समझे बिना पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिपादन और उसका ज्ञान अथवा पदार्थोंके स्वरूपके प्रतिपादनका ज्ञान नहीं हो सकता है। कहा भी है—

जिनेन्द्रभगवानके मतमें नयवादके विना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है, इसलिये जो मुनि नयवादमें निपुण होते हैं वे सच्चे सिद्धान्तके ज्ञाता समझने चाहिये। अतः जिसने सूत्र अर्थात् परमागमको भलेप्रकार जान लिया है उसे ही अर्थसंपादनमें अर्थात् नय और प्रमाणके द्वारा पदार्थके परिज्ञान करनेमें प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि, पदार्थोंका परिज्ञान भी नयवादरूपी जंगलमें अन्तर्निहित है अतएव दुरधिगम्य अर्थात् जाननेके लिये कठिन है ॥ ६८, ६९ ॥ इस तरह नयप्ररूपणाका वर्णन समाप्त हुआ।

अब अनुगमका निरूपण करते हैं।

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाणसे इन चौदह गुणस्थानोंके अन्वेषणरूप प्रयोजनके होने पर वहां ये चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं ॥ २ ॥

---

१. एवम्भूते ।
२. नत्थि नएहि विहूणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि । आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूआ ॥ आ. नि. ६६१.
३. सुत्तं अत्थनिमेणं न सुत्तमेत्तेण अत्थपडिवत्ती । अत्थगई उण णयवायगहणलीणा दुरभिगम्मा ॥ तम्हा अहिगयसुत्तेण अत्थसंपायणम्मि जइयव्वं । आयरियधीरहत्था हंदि महाणं विलंबेन्ति ॥ स. त. ३,६४,६५.

' एत्तो ' एतस्मादित्यर्थः। कस्मात्' प्रमाणात्। कुत एतदवगम्यते? प्रमाणस्य जीवस्थानस्याप्रमाणादवतारविरोधात्। नाजलात्मकहिमवतो निपतज्जलात्मकगङ्गया व्यभिचारः, अवयविनोऽवयवस्यात्र वियोगापायस्य विवक्षितत्वात्। नावयविनोऽवयवो भिन्नो विरोधात्। तदपि प्रमाणं द्विविधं द्रव्यभावप्रमाणभेदात्। द्रव्यप्रमाणात् संख्येया-

---

' एत्तो ' अर्थात् इससे।

शंका— यहां पर ' एतद् ' पदसे किसका ग्रहण किया है?

समाधान— यहां पर ' एतद् ' पदसे प्रमाणका ग्रहण किया है, इसलिये ' इससे ' अर्थात् ' प्रमाणसे ' ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये।

शंका— यह कैसे जाना, कि यहां पर ' एत्तो ' पदका ' प्रमाणसे ' यह अर्थ लिया गया है?

समाधान— क्योंकि, प्रमाणरूप जीवस्थानका अप्रमाणसे अवतार अर्थात् उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इससे यह जाना जाता है कि यहां पर ' एत्तो ' इस पदमें स्थित ' एतत् ' शब्दसे प्रमाणका ग्रहण किया गया है।

यहां पर यदि कोई यह कहे कि कार्यमें कारणानुकूल ही गुणधर्म पाये जाते हैं, क्योंकि, वह कार्य है। इस अनुमानमें जो कार्यत्वरूप हेतु है, वह प्रमाणरूप कारणसे उत्पन्न हुए प्रमाणात्मक जीवस्थानरूप साध्यमें पाया जाता है, और अजलस्वरूप हिमवान्से उत्पन्न हुई जलात्मक गंगानदीरूप विपक्षमें भी पाया जाता है। अतएव इस कार्यत्वरूप हेतुके पक्षमें रहते हुए भी विपक्षमें चले जानेके कारण व्यभिचार दोष आता है। अतः यह कहना कि प्रमाणरूप जीवस्थानकी उत्पत्ति प्रमाणसेही हुई है, संगत नहीं है। इस शंकाको मनमें निश्चय करके आचार्य आगे उत्तर देते हैं कि इस तरह अजलात्मक हिमवान्से निकलती हुई जलात्मक गंगानदीसे भी व्यभिचार दोष नहीं आता है, क्योंकि, यहां पर अवयवीसे वियोगापायरूप अर्थात् अवयवीसे संयोगको प्राप्त हुआ अवयव विवक्षित है। इसका कारण यह है कि अवयवीसे अवयव भिन्न नहीं है, क्योंकि, अवयवीसे अवयवको सर्वथा भिन्न मान लेनेमें विरोध आता है।

विशेषार्थ— यद्यपि हिमवान् पर्वत अजलात्मक है। परंतु उस पर्वतके जिस भागसे गंगा नदी निकली है, वह भाग जलमय ही है। इसलिये यहां पर हिमवान् पर्वतसे उसका जलात्मक अवयव ग्रहण करना चाहिये। इससे जो पहले व्यभिचार दोष दे आये है वह दोष भी नहीं आता है, क्योंकि, यहां पर हिमवान् पर्वतका जलात्मक भाग ही ग्रहण किया गया है, और उससे गंगा नदी निकली है। अतएव इसे विपक्ष न समझकर सपक्ष ही समझना चाहिये। इस तरह सिद्ध हो जाता है कि प्रमाणस्वरूप जीवस्थानकी उत्पत्ति प्रमाणसे ही हुई है।

द्रव्यप्रमाण और भावप्रमाणके भेदसे वह प्रमाण दो प्रकारका है। द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा शब्द, प्रमातृ और प्रमेयके आलम्बनसे क्रमशः संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप द्रव्यजीव-

संख्येयानन्तात्मकद्रव्यजीवस्थानस्यावतारः । भावप्रमाणं पञ्चविधम् :– आभिणिबोहियभावपमाणं, सुदभावपमाणं ओहिभावपमाणं मणपज्जवभावपमाणं केवलभावपमाणं चेदि ।

तत्थ आभिणिबोहियणाणं णाम पंचिंदिय-णोइंदिएहि मदिणाणावरण-खयोवसमेण य जणिदोग्गहेहावाय[1]-धारणाओ सद्द-परिस-रस-रूव-गंध-दिठ्ठ-सुदाणुभूद-विसयाओ बहुबहुविह-खिप्पाणिस्सिदाणुत्त-धुवेदर-भेदेण ति-सय-छत्तीसाओ । सुदणाणं णाम मदि-पुव्वं मदिणाण-पडिगहियमत्थं मोत्तूणण्णत्थम्हि वावदं सुदणाणावरणीय-क्खओवसम-जणिदं । ओहिणाणं णाम दव्व-क्खेत्त-काल-भाव-वियप्पियं पोग्गल-दव्वं पच्चक्खं जाणदि । दव्वदो[2] जहण्णेण जाणंतो एयजीवस्स ओरालिय-सरीर-संचयं लोगागास-पदेस-मेत्ते खंडे कदे तत्थेय-खंडं जाणदि । उक्कस्सेणेग-परमाणुं जाणदि । दोण्हमंतरालमजहण्णमणुक्कस्सोही जाणदि । खेत्तदो जहण्णेणंगुलस्स असंखेज्जदिभागं

स्थानका अवतार हुआ है । भावप्रमाणके पांच भेद हैं, आभिनिबोधिकभावप्रमाण, श्रुतभावप्रमाण, अवधिभावप्रमाण, मनःपर्ययभावप्रमाण और केवलभावप्रमाण ।

उनमें पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे तथा मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे पैदा हुआ, अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप तथा शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध और दृष्ट, श्रुत तथा अनुभूत पदार्थको विषय करनेवाला और बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत अनुक्त, ध्रुव, एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुवके भेदसे तीनसौ छत्तीस भेदरूप आभिनिबोधिक मतिज्ञान होता है ।

जिस ज्ञानमें मतिज्ञान कारण पड़ता है, जो मतिज्ञानसे ग्रहण किये गये पदार्थको छोडकर तत्संबन्धित दूसरे पदार्थमें व्यापार करता है और श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके विकल्पसे अनेक प्रकारके पुद्गलद्रव्यको जो प्रत्यक्ष जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा जघन्यरूपसे जानता हुआ एक जीवके औदारिक शरीरके संचयके लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण खण्ड करने पर उनमेंसे एक खण्ड तकको जानता है । उत्कृष्टरूपसे, अर्थात् उत्कृष्ट अवधिज्ञान एक परमाणुतकको जानता है । अजघन्य और अनुत्कृष्ट अर्थात् मध्यम अवधिज्ञान, जघन्य और उत्कृष्टके अन्तरालगत द्रव्य-भेदोंको जानता है । क्षेत्रकी अपेक्षा अवधिज्ञान जघन्यसे अंगुल, अर्थात् उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्रको जानता है । उत्कृष्टसे असंख्यात लोकप्रमाण क्षेत्रको जानता है । अजघन्य और अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवधिज्ञान जघन्य और उत्कृष्टके अन्तरालगत क्षेत्रभेदोंको जानता है । अवधिज्ञान कालकी अपेक्षा जघन्यसे आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण भूत और भविष्यत् पर्यायोंको जानता है । उत्कृष्टसे असंख्यात लोकप्रमाण समयोंमें स्थित अतीत और अनागत

---

१. मु. जणिदोवग्गहे । २. मु. दव्वादो ।

जाणदि उक्कस्सेण असंखेज्ज-लोगमेत्त-खेत्तं जाणदि । दोण्हमंतरालमजहण्णमणुक्कस्सोहि जाणदि । कालदो जहण्णेण आवलियाए असंखेज्जदि-भागे भूदं भविस्सं च जाणदि । उक्कस्सेण असंखेज्जलोगमेत्त-समएसु अदीदमणागयं च जाणदि । दोण्हं पि विच्चालमजहण्ण-अणुक्कस्सोही जाणदि । भावदो पुव्व-णिरूविद-दव्वस्स सत्ति जाणदि[1] ।

मणपज्जवणाणं णाम पर-मणो-गयाइं मुत्ति-दव्वाइं तेण मणेण सह पच्चक्खं जाणदि । दव्वदो जहण्णेण एग-समय-ओरालिय-सरीर-णिज्जरं जाणदि, उक्कस्सेण एग-समय-पडिबद्धस्स कम्मइय-दव्वस्स अणंतिम-भागं जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण गाउव-पुधत्तं, उक्कस्सेण माणुस-खेत्तस्संतो जाणदि, णो बहिद्धा । कालदो जहण्णेण

....

पर्यायोंको जानता है । अजघन्य और अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवधिज्ञान, जघन्य और उत्कृष्टके अन्तरालगत कालभेदोंको जानता है । भावकी अपेक्षा अवधिज्ञान पहले निरूपणा किये गये द्रव्यकी शक्तिको जानता है ।

जो दूसरोंके मनोगत मूर्तीक द्रव्योंको उस मनके साथ प्रत्यक्ष जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं । मनःपर्ययज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा जघन्यरूपसे एक समयमें होनेवाले औदारिकशरीरके निर्जरारूप द्रव्यको जानता । उत्कृष्टरूपसे कार्माणद्रव्यके अर्थात् आठ कर्मोंके एक समयमें बंधे हुए समयप्रबद्धरूप द्रव्यके अनन्त भागोंमेंसे एक भागको जानता है । क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यरूपसे गव्यूतिपृथक्त्व, अर्थात् दो, तीन कोस क्षेत्रको जानता है, और उत्कृष्टरूपसे मनुष्यक्षेत्रके भीतर जानता है, मनुष्यक्षेत्रके बाहिर नहीं जानता है । (यहांपर मनुष्यक्षेत्रसे प्रयोजन विष्कम्भरूप मनुष्यक्षेत्रसे है, वृत्तरूप मनुष्यक्षेत्रसे नहीं है ।) कालकी अपेक्षा जघन्यरूपसे दो, तीन भवोंको ग्रहण करता है, और उत्कृष्टरूपसे असंख्यात भवोंको ग्रहण करता है,

....

१. णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगज्जियं सविस्सचयं । लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ।। सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि । अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ।। आवलिअसंखभागं तीदभविस्सं च कालदो अवरं । ओही जाणदि भावे कालअसंखेज्जभागं तु ।। सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो । गंगामहाणइस्स पवाहो व्व धुवो हवे हारो ।। परमोहिदव्वभेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति । तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ।। आवलिअसंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया । कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीणमेत्ता हु ।। सव्वोहि त्ति कमसो आवलिअसंखभागगुणिदकमा । दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ।। गो. जी. ३७७, ३७८, ३८२, ४१५, ४१६, ४२२, ४२३. तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ । कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलिआए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ । भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कसेणं वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ । न. सू. १६.

दो तिण्ण भव-ग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भव-ग्गहणाणि जाणदि[1]। केवलणाणं णाम, सव्वदव्वाणि तीदाणागय[2]-वट्टमाणाणि सपज्जयाणि पच्चक्खं जाणदि ।

एत्थ किमाभिणिबोहिय-पमाणादो, किं सुद-पमाणादो, किमोहि-पमाणादो, किं मणपज्जव-पमाणादो, किं केवल-पमाणादो ? एवं पुच्छा सव्वेसिं । एवं पुच्छिदे णो आभिणिबोहिय-पमाणादो, णो ओहि-पमाणादो, णो मणपज्जव-पमाणादो । गंथं पडुच्च सुद-पमाणादो, अत्थदो केवल-पमाणादो ।

भवोंको ग्रहण करता है, अर्थात् जानता है। (भावकी अपेक्षा मनःपर्यय ज्ञान पहले निरूपण किये गये द्रव्यकी शक्तिको जानता है।)

जो अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंसहित संपूर्ण द्रव्योंको प्रत्यक्ष जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

यहां पर क्या आभिनिबोधिक प्रमाणसे प्रयोजन है, क्या श्रुतप्रमाणसे प्रयोजन है, क्या अवधिप्रमाणसे प्रयोजन है, क्या मनःपर्ययप्रमाणसे प्रयोजन हैं, अथवा क्या केवलप्रमाणसे प्रयोजन है ? इसतरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये और इसतरह पूंछे जानेपर, यहांपर न तो आभिनिबोधिकप्रमाणसे प्रयोजन है, न अवधिप्रमाणसे प्रयोजन है, और न मनःपर्ययप्रमाणसे प्रयोजन है, किंतु ग्रन्थकी अपेक्षा श्रुतप्रमाणसे और अर्थकी अपेक्षा केवलप्रमाणसे प्रयोजन है,

---

१. अत्र भावापेक्षया मनःपर्ययज्ञानस्य विषयो नोपलभ्यते । अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु । चक्खिदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ।। मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं । खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ।। अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोबचयं । धुवहारेणिगिवारं भजिदे विदियं हवे दव्वं ।। तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं । धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ।। गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं । विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ।। णरलोए त्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स । जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ।। दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं । अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ।। आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं । तत्तो असंखगुणिदं असंखलोगं तु विउलमदी ।। गो. जी. ४५१–४५८. तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ । खेत्तओ ण उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डुगपयरे उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपचेंदिआणं पज्जत्तयाण मणोगए भावे जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहिअतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ । भावओ णं उज्जुमई जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ । नं. सू. १८.

२. मु. अदीदाणागय ।

एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दव्व-भाव-सुदं पडुच्च बिदियादो, अत्थं पडुच्च पंचमादो केवलणाणादो। पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दव्व-भाव-सुदं पडुच्च चउत्थादो सुद-पमाणादो, अत्थं पडुच्च पढमादो केवलादो। जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे सुदणाणादो केवलणाणादो य। सुदणाणमिदि गुणणामं, अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्तियादीहि संखेज्जमत्थदो अणंतं। एदस्स तदुभयवत्तव्वदा।

अत्थाहियारो दुविहो– अंगबाहिरो अंगपइट्ठो चेदि। तत्थ अंगबाहिरस्स चोद्दस अत्थाहियारा। तं जहा– सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणा पडिक्कमणं वेणइयं किदियम्मं दसवेयालियं[1] उत्तरज्झयणं कप्पववहारो कप्पाकप्पियं महाकप्पियं पुंडरीयं महापुंडरीयं णिसीहियं[2] चेदि। तत्थ जं सामाइयं तं णाम-ट्ठवणा-दव्व-क्खेत्त-काल-भावेसु [3]समत्त-विहाणं वण्णेदि। चउवीसत्थओ चउवीसण्हं तित्थयराणं वंदण-विहाणं तण्णाम-संठाणुस्सेह-पंच-महाकल्लाण-चोत्तीस-अइसय-सरूवं तित्थयर-वंदणाए सहलत्तं च वण्णेदि। वंदणा एग-जिण-जिणालय-विसय-वंदणाए णिरवज्ज-भावं वण्णेइ।

ऐसा उत्तर देना चाहिये।

यहांपर पूर्वानुपूर्वीसे गणना करनेपर द्रव्यश्रुत और भावश्रुतकी अपेक्षा तो दूसरे श्रुतप्रमाणसे प्रयोजन है और अर्थकी अपेक्षा पांचवें केवलज्ञानप्रमाणसे प्रयोजन है। पश्चादानुपूर्वीसे गणना करनेपर द्रव्यश्रुत और भावश्रुतकी अपेक्षा चौथे श्रुतप्रमाणसे प्रयोजन है और अर्थकी अपेक्षा प्रथम केवलप्रमाणसे प्रयोजन है। यथातथानुपूर्वीसे गणना करनेपर श्रुतप्रमाण और केवलप्रमाण इन दोनोंसे प्रयोजन है।

श्रुतज्ञान यह सार्थक नाम है। वह अक्षर, पद, संघात और प्रतिपत्ति आदिकी अपेक्षा संख्यातभेदरूप है और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है।

तीन वक्तव्यताओंमेंसे इस श्रुतप्रमाणकी तदुभयवक्तव्यता (स्वसमय-परसमयवक्तव्यता) जानना चाहिये।

अर्थाधिकार दो प्रकारका है– अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। उन दोनोंमेंसे, अंगबाह्यके चौदह अर्थाधिकार हैं। वे इसप्रकार हैं– सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका। उनमेंसे, सामायिक नामका अंगबाह्य अर्थाधिकार नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह भेदों द्वारा समताभावके विधानका वर्णन करता है। चतुर्विंशतिस्तव अर्थाधिकार उस उस कालसंबन्धी चौवीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करनेकीविधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेध, पांच महाकल्याणक, चौंतीस अतिशयोंके स्वरूप और तीर्थंकरोंकी वन्दनाकी सफलताका वर्णन करता है।

---

१. क. दसवेयालिया। २. मू. णिसिहियं। ३. प्रतिषु ' सम्मत्त ' इतिपाठः।

पडिक्कमणं कालं पुरिसे[1] य अस्सिऊण सत्तविह-पडिक्कमणाणि वण्णेइ[2]। वेणइयं णाण-दंसण-चरित्त-तवोवयारविणए वण्णेइ । किदियम्मं अरहंत-सिद्ध-आइरिय-बहुसुद-साहूणं पूजाए[3] विहाणं वण्णेइ। दसवेयालियं आयार-गोयार[4]-विहिं वण्णेइ[5]। उत्तरज्झयणं उत्तर-पदाणि वण्णेइ[6] । कप्पववहारो साहूणं जोग्गमाचरणं अकप्प-सेवणाए

वन्दना नामका अर्थाधिकार एक जिनेन्द्रदेवसंबन्धी और उन एक जिनेन्द्रदेवके अवलम्बनसे जिनालयसंबन्धी वन्दनाके निरवद्यभावका अर्थात् प्रशस्तरूप भावका वर्णन करता है। (प्रमादकृत दैवसिक आदि दोषोंका निराकरण जिसके द्वारा किया जाता है उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। वह दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और औत्त-मार्थिकके भेदसे सात प्रकारका है।) प्रतिक्रमण नामका अर्थाधिकार, दुःषमादि काल और छह संहननसे युक्त स्थिर तथा अस्थिर स्वभाववाले पुरुषोंका आश्रय लेकर इन सात प्रकारके प्रतिक्रमणोंका वर्णन करता है। वैनियक नामका अर्थाधिकार ज्ञानविनय, दर्शनविनय चारित्र-विनय, तपविनय और उपचारविनय इसतरह इन पांच प्रकारकी विनयोंका वर्णन करता है। कृतिकर्म नामका अर्थाधिकार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुकी पूजा आदिकी विधिका वर्णन करता है। विशिष्ट कालको विकाल कहते हैं। उसमें जो विशेषता होती है उसे वैकालिक कहते हैं। वे वैकालिक दश हैं। उन दश वैकालिकोंका दशवैकालिक नामका

---

१. मु. पुरिसं च । क. पुरुसे च ।

२. प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमणम् । तच्च दैवसिकरात्रिक-पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकैर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविधम् । भरतादिक्षेत्रं दुःषमादिकालं षट्संहनन-समन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदांश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणम् ।

गो. जी., जी. प्र., टी. ३६७.

३. मु. पूजाविहाणं वण्णेइ । कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यत इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावंदनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनतिचतुःशिरोद्वादशाव-र्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६७.

४. मु. गोयर–। आचारो मोक्षार्थमनुष्ठानविशेषस्तस्य गोचरो विषय आचारगोचरः (आचा० ७ अ १ उ.) आचारश्च ज्ञानादिविषयः पञ्चधा, गोचरश्च भिक्षाचर्येत्याचारगोचरं ज्ञानाचारादिके भिक्षाचर्यायां च (नं.) × × आचारः श्रुतज्ञानादिविषयमनुष्ठानं कालाध्ययनादि, गोचरो भिक्षाटनम्, एतयोः समाहारद्वन्द्वः आचारगोचरम् (भ. २ श. १ उ.) अभि. रा. को. (आयारगोयर)

५. विशिष्टाः काला विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दश वैकालिकानि वर्ण्यन्तेऽस्मिन्निति दशवैकालिकम् । तच्च मुनिजनानां आचरणगोचरविधिं पिण्डशुद्धिलक्षणं च वर्णयति । गो. जी., जी. प्र. टी. ३६७. तेसु दशाध्ययनेषु किमित्याह, पढमे धम्मपसंसा सो य इहेव जिणसासणम्हि त्ति । विइए धिइए सक्का काउं जे एस धम्मो त्ति ॥ (तइए आयारकहा उ खुड्डिया आयसंजमोवाओ ।) तह जीवसंजमो वि य होइ चउत्थम्मि अज्झयणे ॥ भिक्खविसोही तवसंजमस्स गुणकारिया उ पंचमए । छट्ठे आयारकहा महई जोग्गा महयणस्स ॥ वयणविभत्ती पुण सत्तमम्मि पणिहाणमट्ठमे भणियं । णवमे विणओ दसमे समाणियं एस भिक्खु त्ति ॥ अभि. रा. को. (दसवेयालिय) ,

६. उत्तराणि अधीयंते पठ्यंते अस्मिन्निति उत्तराध्ययनम् । तच्च चतुर्विधोपसर्गाणां द्वाविंशति-

पायच्छित्तं च वण्णेइ । कप्पाकप्पियं साहूणं जं कप्पदि जं च ण कप्पदि तं सव्वं वण्णेदि । महाकप्पियं काल-संघडणाणि अस्सिऊण साहु-पाओग्ग-दव्व-खेत्तादीणं वण्णणं कुणइ। पुंडरीयं चउव्विह-देवेसुववादकारण-अणुट्ठाणाणि वण्णेइ । महापुंडरीयं सयलिंद-पडिइंदेसु[1] उप्पत्ति-कारणं वण्णेइ । [2]णिसीहियं बहुविह-पायच्छित्त-विहाण-वण्णणं कुणइ[3] ।

अर्थाधिकार वर्णन करता है । तथा वह मुनियोंकी आचारविधि और गोचरविधिका भी वर्णन करता है । जिसमें अनेक प्रकारके उत्तर पढ़नेको मिलते हैं उसे उत्तराध्ययन अर्थाधिकार कहते हैं । यह चार प्रकारके उपसर्गोंको कैसे सहन करना चाहिये ? बाईस प्रकारके परीषहोंके सहन करनेकी विधि क्या है ? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरोंका वर्णन करता है । कल्पव्यवहार साधुओंके योग्य आचरणका और अयोग्य आचारणके होने पर प्रायश्चित्तविधिका वर्णन करता है । कल्प नाम योग्यका है और व्यवहार नाम आचारका है । कल्पाकल्प द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा मुनियोंके लिये यह योग्य है और यह अयोग्य है, इसतरह इन सबका वर्णन करता है । महाकल्प काल और संहननका आश्रय कर साधुओंके योग्य द्रव्य और क्षेत्रादिकका वर्णन करता है । (इसमें, उत्कृष्ट संहननादि-विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रय लेकर प्रवृत्ति करनेवाले जिनकल्पी साधुओंके योग्य त्रिकालयोग आदि अनुष्ठानका और स्थविरकल्पी साधुओंकी दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना आदिका विशेष वर्णन है ।) पुण्डरीक भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी इन चार प्रकारके देवोंमें उत्पत्तिके कारणरूप दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यग्दर्शन और संयम आदि अनुष्ठानोंका वर्णन करता है । महापुण्डरीक समस्त इन्द्र और प्रतीन्द्रोंमें उत्पत्तिके कारणरूप तपोविशेष आदि आचरणका वर्णन करता है । प्रमादजन्य दोषोंके निराकरण करनेको निषिद्धि कहते हैं, और इस निषिद्धि अर्थात् बहुत प्रकारके प्रायश्चित्त के प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको निषिद्धिका कहते हैं ।

परीषहाणां च सहनविधानं तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६७. कम. उत्तरेण पगयं आसारस्सेव उवरिमाइं तु । तम्हा उ उत्तरा खलु अज्झयणा होंति णायव्वा ।। अभि. रा. को. (उत्तरज्झयण) कानि तान्युत्तरपदानीति चेदुच्यते छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा— १ विणयसुयं २ परीसहो ३ चाउरंगिज्जं ४ असंखयं ५ अकाममरणिज्जं ६ पुरिसविज्जा ७ उरब्भिज्जं ८ काविलियं ९ नमिपव्वज्जा १० दुमपत्तयं ११ बहूसुयपूजा १२ हरिएसिज्जं १३ चित्तसंभूयं १४ उसुयारिज्जं १५ सभिक्खुगं १६ समाहिट्ठाणाइं १७ पावसमणिज्जं १८ संजइज्जं १९ मियाचारिया २० अणाहपव्वज्जा २१ समुद्दपालिज्जं २२ रहनेमिज्जं २२ गोयमकेसिज्जं २४ समितीओ २५ जन्नइज्जं २६ सामायारी २७ खलुंकिज्जं २८ मोक्खमग्गगई २९ अप्पमाओ ३० तवोमग्गो ३१ चरणविही ३२ पमायट्ठाणाइं ३६ कम्मपयडी ३४ लेसज्झयणं ३५ अणगारमग्गे ३६ जीवाजीवविभक्ती य । सम. सू. ३६.

१. मु. पडिइंदे । २. मु. निबिहियं ।

३. निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञायां कप्रत्यये निषिद्धिका । तच्च प्रमाददोष-विशुद्धयर्थं बहुप्रकारं प्रायश्चित्तं वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६८.

अंगपविट्ठस्स अत्थाधियारो बारसविहो । तं जहा--आयारं[1] सूदयदं ठाणं समवायो वियाहपण्णत्ती णाहाधम्मकहा[2] उवासयज्झयणं अंतयडदसा अणुत्तरोववादियदसा पण्हवायरणं विवागसुत्तं दिट्ठिवादो चेदि । एत्थायारंगमट्ठारह-पद-सहस्सेहि १८०००--

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए ।
कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झई[3] ॥ ७० ॥
जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए ।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई ॥ ७१ ॥

एवमादियं मुणीणमायारं वण्णेदि[4] ।

सूदयदं णाम अंगं छत्तीस-पय-सहस्सेहि ३६००० णाणविणय-पण्णावणा-कप्पाकप्प-च्छेदोवट्ठावण-ववहारधम्मकिरियाओ परूवेइ ससमय-परसमय-सरूवं च परूवेइ[5] ।

अंगप्रविष्टके अर्थाधिकार बारह प्रकारके हैं । वे ये हैं-- आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अंतःकृद्दशा, अनुत्तरौपपादिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद । इनमेंसे, आचारांग अठारह हजार पदोंके द्वारा--

किस प्रकार चलना चाहिये ? किस प्रकार खड़े रहना चाहिये ? किस प्रकार बैठना चाहिये ? किस प्रकार शयन करना चाहिये ? किस प्रकार भोजन करना चाहिये ? किस प्रकार संभाषण करना चाहिये और किस प्रकार पापकर्म नहीं बंधता है ? (इसतरह गणधरके प्रश्नोंके अनुसार) यत्नसे चलना चाहिये, यत्नपूर्वक खड़े रहना चाहिये, यत्नसे बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक शयन करना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये, यत्नसे संभाषण करना चाहिये । इस प्रकार आचरण करनेसे पापकर्मका बंध नहीं होता है ॥ ७०-७१ ॥ इत्यादि रूपसे मुनियोंके आचारका वर्णन करता है ।

सूत्रकृतांग छत्तीस हजार पदोंके द्वारा ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहारधर्मक्रियाका प्ररूपण करता है । तथा यह स्वसमय और परसमयका भी निरूपण

---

१. मू. आयारो. २. मू. णाह.

३. मूलाचा. १०१२, १०१३. दशवै. ४, ७, ८.

४. आयारे णं समणाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-ट्ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोग-जुंजण-भासा-समिति-गुत्ती-सेज्जोवहि-भत्त-पाण-उग्गम-उप्पायण-एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-णियम-तवोवहाण-सुप्पसत्थमाहिज्जइ । सम. सू. १३६.

५. सुअगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमयपरसमया सूइज्जंति × × । सूअगडे णं जीवाजीव-पुण्ण-पापासव-संवर-णिज्जरण-बंध-मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति समणाणं अचिरकाल-पव्वइयाणं कुसमयमोह-मोहमइ-मोहियाणं संदेह-जाय-सहजबुद्धि-परिणाम-संमइयाण पावकरमलिन-मइ-गुण-विसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स चउरासीए अकिरियावाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं बत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जंति × × × । सम. सू. १३७.

ठाणं णाम अंगं बायालीस-पद-सहस्सेहि ४२००० एगादि-एगुत्तर-ट्ठाणाणि वण्णेदि[1]। तस्सोदाहरणं---

एक्को चेय महप्पो सो दुवियप्पो ति-लक्खणो भणिओ।
चदु-संकमणा-जुत्तो पंचग्ग-गुण-प्पहाणो य ॥ ७२ ॥

छक्कावक्कम-जुत्तो कमसो सो सत्त-भंगि-सब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दस-ठाणियो भणियो[2] ॥ ७३ ॥

करता है। स्थानांग ब्यालीस हजार पदोंके द्वारा एकसे लेकर उत्तरोत्तर एक एक अधिक स्थानोंका वर्णन करता है। उसका उदाहरण---

महात्मा अर्थात् यह जीव द्रव्य निरन्तर चैतन्यरूप धर्मसे उपयुक्त होनेके कारण उसकी अपेक्षा एक ही है। ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है। कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और ज्ञानचेतनासे लक्ष्यमाण होनेके कारण तीन भेदरूप है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यके भेदसे तीन भेदरूप है। चार गतियोंमें परिभ्रमण करनेकी अपेक्षा इसके चार भेद हैं। औदयिक आदि पांच प्रधान गुणोंसे युक्त होनेके कारण इसके पांच भेद हैं। भवान्तरमें संक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे इसतरह छह संक्रमणलक्षण अपक्रमोंसे युक्त होनेकी अपेक्षा छह प्रकारका है। अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भंगोंसे युक्त होनेकी अपेक्षा सात प्रकारका है। ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंके आश्रवसे युक्त होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। अथवा ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका तथा आठ गुणोंका आश्रय होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेवाला अथवा जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंरूप परिणमन करनेवाला, होनेकी अपेक्षा नौ प्रकारका है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, साधारणवनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजातिके भेदसे दश स्थानगत होनेकी अपेक्षा दश प्रकारका कहा गया है ॥ ७२-७३ ॥

---

१. ठाणे णं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पयत्थाणं × × एक्कविहवत्तव्वयं दुविह जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति × × । सम. सू. १३८.

२. पञ्चा. ७१, ७२. संग्रहनयेन एक एवात्मा। व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः। कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः। औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधानः। पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्तः। स्यादस्ति स्यान्नास्ति × × इत्यादिसप्तभंगीसद्भावेऽप्युपयुक्तः। अष्टविधकर्मास्रवयुक्तत्वादष्टास्रवः। नवजीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः पदार्थाः विषयाः यस्य स नवार्थः। पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियभेदाद् दशस्थानकाः। गो. जी., जी. प्र., टी. ३५६.

समवायो णाम अंगं चउसट्ठि-सहस्सब्भहिय-एग-लक्ख-पदेहि १६४००० सव्वपयत्थाणं समवायं वण्णेदि[1]। सो वि समवायो चउव्विहो– दव्व-खेत्त-काल-भावसमवायो चेदि । तत्थ दव्वसमवायो धम्मत्थिय-अधम्मत्थिय-लोगागास-एगजीव-पदेसा च समा । खेत्तदो सीमंतणिरय-माणुसखेत्त-उडुविमाण-सिद्धिखेत्तं च समा । कालदो समयो समएण, मुहुत्तो मुहुत्तेण समो । भावदो केवलणाणं केवल-दंसणेण समं, णेयप्पमाणणाण[2]-मेत्त-चेयणोवलंभादो । वियाहपण्णत्ती णाम अंगं दोहि लक्खेहि अट्ठावीस-सहस्सेहि पदेहि २२८००० किमत्थि जीवो, किं णत्थि जीवो, इच्चेवमाइयाइं सट्ठि-वायरण[3]-सहस्साणि परूवेदि[4] । णाहाधम्मकहा णाम[5] अंगं पंच-लक्ख-छप्पण्ण-

---

समवाय नामका अंग एक लाख चौसष्ठ हजार पदोंके द्वारा संपूर्ण पदार्थोंके समवायका वर्णन करता है, अर्थात् सादृश्यसामान्यसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जीवादि पदार्थोंका ज्ञान कराता है । वह समवाय चार प्रकारका है– द्रव्यसमवाय, क्षेत्रसमवाय, काल-समवाय और भावसमवाय । उनमेंसे, द्रव्यसमवायकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीवके प्रदेश समान हैं । क्षेत्रसमवायकी अपेक्षा प्रथमनरकके प्रथम पटलका सीमन्तक नामका इन्द्रक बिल, ढाई द्वीपप्रमाण मनुष्यक्षेत्र, प्रथमस्वर्गके प्रथम पटलका ऋजु नामका इन्द्रक विमान और सिद्धक्षेत्र समान हैं । कालकी अपेक्षा एक समय एक समयके बराबर है और एक मुहूर्त एक मुहुर्तके बराबर है । भावकी अपेक्षा केवलज्ञान केवलदर्शनके समान है, क्योंकि, ज्ञेयप्रमाण ज्ञान मात्र चेतनाशक्तिकी उपलब्धि होती है । व्याख्याप्रज्ञप्ति नामका अंग दो लाख अट्ठाईस हजार पदोंद्वारा क्या जीव है ? क्या जीव नहीं है ? इत्यादिक रूपसे साठ हजार प्रश्नोंका व्याख्यान करता है । नाथधर्मकथा अथवा ज्ञातृधर्मकथा नामका अंग पांच लाख छप्पन्न हजार पदोंद्वारा सूत्र पौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधिसे स्वाध्यायकी

---

१. समवाएणं एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुट्ठीए दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति । तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरे वि अ बहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुअ-सुरगणाणं आहारुस्सासलेसाआवाससंखआययप्पमाणउववायचवणउग्गहणोवहिवेयणविहाण-उवओगजोगइंदियकसाय विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेहपरिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थगरगणहराणं सम्मत्तभरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहरहलहराण य वासाण य णिग्गमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति × × । सम. सू. १३९.

२. मु. णेदप्पमाणं णाण—　३. क. वाहरण.

४. वियाहेणं नाणाविहसुरनरिंदरायरिसिविविहसंसइअपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेणं भासियाणं दव्वगुणखेत्तकालपज्जयपदेसपरिणामजहच्छिट्ठियभावअणुगमणिक्खेवणयप्पमाणसुनिउणोवक्कमविविहप्पकार-पगडपयासियाणं × × × छत्तीस सहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ × × × पण्णविज्जंति । सम. सू. १४०.

५. नाथः त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं,

सहस्स-पदेहि ५५६००० सुत्त-पोरिसीसु[1] तित्थयराणं धम्मुवदेसणं[2] गणहरदेवस्स जाद-संसयस्स संदेह-छिंदण-विहाणं, बहुविह-कहाओ उवकहाओ च वण्णेदि। उवासयज्झयणं णाम अंगं एक्कारस-लक्ख-सत्तरि-सहस्स-पदेहि ११७००००—

दंसण-वद-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-राइभत्ते य ।
बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्दिट्ठ-देसविरदी य[3] ॥ ७४ ॥

इदि एक्कारस-विह-उवासगाणं लक्खणं तेसिं चेव वदारोवण-विहाणं तेसिमाचरणं च वण्णेदि[4] । अंतयडदसा णाम अंगं तेवीस-लक्ख-अट्ठावीस-सहस्स-

---

प्रस्थापना हो इसलिये, तीर्थंकरोंकी धर्मदेशनाका, सन्देहको प्राप्त गणधरदेवके सन्देहको दूर करनेकी विधिका तथा अनेक प्रकारकी कथा और उपकथाओंका वर्णन करता है। उपासकाध्ययन नामका अंग ग्यारह लाख सत्तर हजार पदोंके द्वारा दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत इन ग्यारह प्रकारके श्रावकोंके लक्षण, उन्हींके व्रत धारण करनेकी विधि और उनके आचरणका वर्णन करता है। अन्तकृद्दशा नामका अंग तेवीस लाख अट्ठाईस हजार पदोंके द्वारा एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें नानाप्रकारके दारुण उपसर्गोंको सहन कर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषोंको प्राप्त कर निर्वाणको प्राप्त हुये दश दश अन्तकृतकेवलियोंका वर्णन करता है, तत्त्वार्थभाष्यमें भी कहा है—

घातिकर्मक्षयानन्तरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्नः तीर्थकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्ना-पराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यंत द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति अन्यकालेऽपि गणधर-शक्रचक्रधरप्रश्नानन्तरं चोद्भवति। एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मकं वा धर्मं कथयति। अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्ठास्तित्वानास्तित्वादिस्वरूपकथनम्। अथवा ज्ञातृणां तीर्थंकरगणधरशक्रचक्रधरादीनां धर्मानु-बंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथा नाम वा षष्ठमंगम्। गो. जी., जी. प्र. टी. ३५६. णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइअइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जावो सुयपरिग्गहातवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाइं पुणबोहिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति × × । सम. सू. १४१.

१. सुत्तपोरिसी-सूत्रपौरुषी सिद्धान्तोक्तविधिना स्वाध्यायप्रस्थापनम्। अभि. रा. को.

२. मु. धम्मदेसणं।

३. प्रा. प. १, १३६। गो. जी. ४७७.

४. उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा। वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ-अभिगम-सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण-उत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहण-पालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासा अपच्छिममारणं-तिया य संलेहणाझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता × × कप्पवरविमाणुत्तमेसु अणुभवंति × × अणोवमाइं सोक्खाइं। एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य × × आघविज्जंति। सम. सू. १४२.

पदेहि २३२८००० एक्केक्कम्हि य तित्थे दारुणे बहुविहोवसग्गे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिव्वाणं गदे दस दस वण्णेदि । उक्तं च तत्त्वार्थभाष्ये--- संसारस्यान्तः कृतो यैस्तेऽन्तकृतः नमि-मतङ्ग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलीक-किष्कंविल[1]-पालम्बाष्टपुत्रा इति एते दश वर्द्धमानतीर्थंकर-तीर्थे[2] । एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये, एवं दश दशानगाराः दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृतो दशास्यां वर्ण्यन्त इति अन्तकृद्दशा[3] । अणुत्तरोववादियदसा णाम अंगं वाणउदि-लक्ख-चोयाल-सहस्स-पदेहि ९२४४००० एक्केक्कम्हि य तित्थे दारुणे बहुविहोवसग्गे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण अणुत्तर-विमाणं गदे दस दस वण्णेदि । उक्तं च तत्त्वार्थ-

---

जिन्होने संसारका अन्त किया उन्हें अन्तकृतकेवली कहते हैं । वर्द्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्ब, अष्टपुत्र ये दश अन्तकृतकेवली हुए हैं । इसी प्रकार ऋषभदेव आदि तेवीस तीर्थंकरोंके तीर्थमें और दूसरे दश दश अनगार दारुण उपसर्गोंको जीतकर संपूर्ण कर्मोंके क्षयसे अन्तकृतकेवली हुए । इन सबकी दशाका जिसमें वर्णन किया जाता है उसे अन्तकृद्दशा नामका अंग कहते है ।

अनुत्तरौपपादिकदशा नामका अंग बानवे लाख चवालीस हजार पदोंद्वारा एक एक तीर्थमें नाना प्रकारके दारुण उपसर्गोंको सहकर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशयविशेषोंको प्राप्त करके पांच अनुत्तर विमानोंमें गये हुए दश दश अनुत्तरौपपादिकोंका वर्णन करता है । तत्त्वार्थ-भाष्यमें भी कहा है---

उपपादजन्म ही जिनका प्रयोजन है उन्हें औपपादिक कहते हैं । विजय, वैजयन्त,

---

१. मु. किष्किंविल ।

२. " संसारस्यान्तः कृतो यैस्तेऽन्तकृतः नमिमतंगसोमिलरामपुत्रसुदर्शनयमवाल्मीकवलीकनिष्कंबल-पालंबष्टपुत्रा इत्येते दश वर्धमानतीर्थंकरतीर्थे ॥ " त. रा. वा. पृ. ५१. ' वलीक ' स्थाने ' वलिक ' पाठः गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७. " अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा, णमि १ मातंगे २ सोमिले ३ रामगुत्ते ४ सुदंसणे ५ चेव । जमाली ६ त भगाली त ७ किंकंमे ८ पल्लतेतिय ९ ॥ फाले अंबडपुत्ते त १० एमेते दस आहिता ॥ एतानि च नमीत्यादिकान्यन्तकृत्साधुनामानि अन्तकृद्दशाङ्गप्रथमवर्गेऽध्ययनसंग्रहे नोपलभ्यन्ते, यतस्तत्राभिधीयते--- ' गोयम १ समुद्द २ सागर ३ गंभीरे ४ चेव होइ थिमिए ५ य । अयले ६ कंपिल्ले ७ खलु अक्खोभ ८ पसेणइ ९ विण्हू १० ॥ ततो वाचनान्तरापेक्षाणि इमानीति संभावयामः । न च जन्मान्तरनामापेक्षया एतानि भविष्यन्तीति वाच्यं, जन्मान्तराणां तत्र अनभिधीयमानत्वादिति । स्था. सू. ७५४. (टीका).

३. अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं × × समोसरणा धम्मायरिया, धम्मकहा × × पव्वज्जाओ, × × जियपरीसहाणं चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ, जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुणिवरो × × मोक्खसुखं च पत्ता एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेइ । सम. सू. १४३.

भाष्ये— उपपादो जन्म प्रयोजनमेषां त इमे औपपादिकाः, विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजित-सर्वार्थसिद्धाख्यानि पंचानुत्तराणि । अनुत्तरेष्वौपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः, ऋषिदास-धन्य-सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नन्द[1]-नन्दन-शालिभद्राभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इत्येते दश वर्द्धमानतीर्थंकरतीर्थे । एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये एवं दश दशानगाराः दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य विजयाद्यनुत्तरेषूत्पन्नाः इत्येवमनुत्तरौपपादिकाः दशास्यां वर्ण्यन्त इत्यनुत्तरौपपादिकदशा[2] । पण्हवायरणं णाम अंगं तेणउदिलक्ख-सोलह-सहस्स-पदेहि ९३१६००० अक्खेवणी विक्खेवणी संवेयणी णिव्वेयणी चेदि

जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पांच अनुत्तर विमान हैं । जो अनुत्तरोंमें उपपादजन्मसे पैदा होते हैं, उन्हें अनुत्तरोपपादिक कहते हैं । ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय वारिषेण और चिलातपुत्र ये दश अनुत्तरोपपादिक वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें हुए हैं । इसी तरह ऋषभनाथ आदि तेवीस तीर्थंकरोंके तीर्थमें अन्य दश दश महासाधु दारुण उपसर्गोंको जीतकर विजयादिक पांच अनुत्तरोंमें उत्पन्न हुए । इस तरह अनुत्तरोंमें उत्पन्न होनेवाले दश साधुओंका जिसमें वर्णन किया जावे उसे अनुत्तरोपपादिकदशा नामका अंग कहते हैं ।

प्रश्नव्याकरण नामका अंग तेरानवे लाख सोलह हजार पदोंके द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी इन चार कथाओंका (तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल-संबन्धी धन, धान्य, लाभ, अलाभ, जीवित, मरण, जय और पराजय संबन्धी प्रश्नोंके पूंछनेपर उनके उपायका) वर्णन करता है ।

---

१. ' कार्तिक नंद ' इति पाठः । त. रा. वा. पृ. ५१. ' कार्तिकेय नंद ' इति पाठः गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७. मु. कार्तिकेयानन्द ।

२. अणुत्तरोववाइयदसासु णं अनुत्तरोववाइयाणं × × × तित्थकरसमोसरणाइ परमंगल्लजगाहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं × × अणगारमहरिसीणं वण्णओ × × अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा × × जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तम-ज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अनुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण × × आघविज्जंति सम. सू. १४४. ईसिदासे य १ धण्णे त २ सुणक्खत्ते य ३ कातिते ४ । सट्ठाणे ५ सालिभद्दे त ६, आणंदे ७ तेतली ८ तित । दसन्नभद्दे ९ अत्तिमुत्ते १० एमेते दस आहिया ॥ ' अणुत्तरो ' इत्यादि, इह च त्रयो वर्गास्तत्र तृतीयवर्गे दृश्यमानाध्ययनैः कैश्चित्सह साम्यमस्ति, न सर्वैः । यतस्तत्र तु दृश्यते ' धन्यश्च सुनक्षत्रः ऋषिदासश्चाख्यातः पेल्लको रामपुत्रश्चन्द्रमाः प्रोष्ठक इति ॥ १ ॥ पेढालपुत्रोऽनगारः पोट्टिलश्च विहल्लः दशम उक्तः, एवमेते आख्याता दश ॥ २ ॥ तदेवमिहापि वाचनान्तरापेक्षयाऽध्ययनविभाग उक्तो न पुनरुप-लभ्यमानवाचनापेक्षयेति । स्था. सू. ७५५. (टीका)

चउव्विहाओ कहाओ वण्णेदि[1]। तत्थ अक्खेवणी[2] णाम छद्दव्व-णव-पयत्थाणं सरूवं दिगंतर-समयांतर-णिराकरणं सुद्धिं करेंती परूवेदि। विक्खेवणी[3] णाम पर-समएण स-समयं दूसंती पच्छा दिगंतर-सुद्धिं करेंती स-समयं थावंती छद्दव्व-णव-पयत्थे परूवेदि। संवेयणी[4] णाम पुण्ण-फल-संकहा। काणि पुण्ण-फलाणि ? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्धीओ। णिव्वेयणी[5] णाम पाव-फल-संकहा। काणि पाव-फलाणि ? णिरय-तिरिय-कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा-मरण-वाहि-वेयणा-दालिद्दादीणि। संसार-सरीर-भोगेसु वेरग्गुप्पाइणी णिव्वेयणी णाम। उक्तं च---

---

जो नाना प्रकारकी एकान्त दृष्टियोंका और दूसरे समयोंका निराकरणपूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नौ प्रकारके पदार्थोंका प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। जिसमें पहले परसमयके द्वारा स्वसमयमें दोष बतलाये जाते हैं। अनन्तर परसमयकी आधारभूत अनेक एकान्त दृष्टियोंक्त शोधन करके स्वसमयकी स्थापना की जाती है और छह द्रव्य नौ पदार्थोंका प्ररूपण किया जाता है उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं। पुण्यके फलका वर्णन करनेवाली कथाको संवेदनी कथा कहते हैं।

शंका--- पुण्यके फल कौनसे हैं।

समाधान--- तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरोंकी ऋद्धियां पुण्यके फल हैं।

पापके फलका वर्णन करनेवाली कथाको निर्वेदनी कथा कहते हैं।

शंका--- पापके फल कौनसे हैं ?

समाधान--- नरक, तिर्यंच और कुमानुषकी योनियोंमें जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र्य आदिकी प्राप्ति पापके फल हैं।

अथवा, संसार, शरीर और भोगोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली कथाको निर्वेदनी कथा कहते हैं। कहा भी है---

---

१. प्रश्नस्य दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्यार्थस्त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणम्। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया अवक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं नाम। गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७.

२. प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थंकरादिवृत्तान्तलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। गो. जी., जी. प्र. टी. ३५७.

३. प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुत्वादिबलेन सर्वथैकान्तादिपरसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७.

४. रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनरूपा संवेजनी कथा। गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७.

५. संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुःखदुष्कुलविरूपांगदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णना-

आक्षेपणीं[1] तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणीं[2] तत्त्वदिगन्तशुद्धिम् ।
संवेगिनीं धर्मफलप्रपञ्चां निर्वेदिनीं[3] चाह कथां विरागाम्[4] ॥ ७५ ॥

एत्थ विक्खेवणी णाम कहा जिण-वयणमयाणंतस्स ण कहेयव्वा[5], अगहिद-स-समय-सब्भावो पर-समय-संकहाहि वाउलिद-चित्तो मा मिच्छत्तं गच्छेज्ज त्ति तेण तस्स विक्खेवणीं मोत्तूण सेसाओ तिण्णि वि कहाओ कहेयव्वाओ । तदो गहिद-ससमयस्स[6] उवलद्ध-पुण्ण-पावस्स जिण-सासणे अट्ठि-मज्जाणुरत्तस्स[7] जिण-वयण-

---

तत्त्वोंका निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है । तत्त्वसे दिशान्तरको प्राप्त हुई दृष्टियोंका शोधन करनेवाली अर्थात् परमतकी एकान्त दृष्टियोंका शोधन करके स्वसमयकी स्थापना करनेवाली विक्षेपणी कथा है । विस्तारसे धर्मके फलका वर्णन करनेवाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेदिनी कथा है ।

इन कथाओंका प्रतिपादन करते समय जो जिनवचनको नहीं जानता है अर्थात् जिसका जिनवचनमें प्रवेश नहीं है, ऐसे पुरुषको विक्षेपणी कथाका उपदेश नहीं करना चाहिये, क्योंकि, जिसने स्वसमयके रहस्यको नहीं जाना है और परसमयकी प्रतिपादन करनेवाली कथाओंके सुननेसे व्याकुलित चित्त होकर वह मिथ्यात्वको स्वीकार न कर लेवे, इसलिये स्वसमयके रहस्यको नहीं जाननेवाले पुरुषको विक्षेपणी कथाका उपदेश न देकर शेष तीन कथाओंका उपदेश देना चाहिये । उक्त तीन कथाओंद्वारा जिसने स्वसमयको भलीभांति समझ लिया है, जो पुण्य और पापके स्वरूपको जानता है, जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियोंके मध्यमें रहनेवाला

द्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा । गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७.

१. आक्षिप्यते मोहात्तत्त्वं प्रत्याकृष्यते श्रोताऽनयेत्याक्षेपणी । चतुर्विधा सा आयारक्खेवणी, ववहारक्खेवणी, पण्णत्तिक्खेवणी, दिट्ठिवायक्खेवणी । आचारो लोचास्नानादिः, व्यवहारःकथंचिदापन्नदोष-व्यपोहाय प्रायश्चितलक्षणः, प्रज्ञप्तिश्च संशयापन्नस्य मधुरवचनैः प्रज्ञापना, दृष्टिवादश्च श्रोत्रपेक्षया सूक्ष्मजीवादि-भावकथनम् । विज्जाचरणं च तवो य पुरिसकारो य समिइ गुत्तीओ । उवइस्सइ खलु जहियं कहाइ अक्खेवणीइरसो ॥ अभि. रा. को. (अक्खेवणी).

२. विक्षिप्यते सन्मार्गात्कुमार्गे कुमार्गाद्वा सन्मार्गे श्रोताऽनयेति विक्षेपणी । सा चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा, (१) ससमयं कहेत्ता परसमयं कहेइ । (२) परसमयं कहेत्ता ससमयं ठावित्ता भवइ । (३) सम्मावायं कहेइ, सम्मावायं कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ । (४) मिच्छावायं कहेत्ता सम्मावायं ठावइत्ता भवइ ॥ जा ससमयवज्जा खलु होइ कहा लोगवेयसंजुत्ता । परसमयाणं च कहा एसा विक्खेवणी णाम । अभि. रा. को. (विक्खेवणी). ३. मु. निर्वेगिनीं ।

४. आक्खेवणी कहा सा विज्जाचरणमुवदिस्सदे जत्थ । ससमयपरसमयगदा कथा दु विक्खेवणी णाम ॥ संवेयणी पुण कहाणाण चरित्तं तववीरियइड्ढिगदा । णिव्वेयणी पुण कहा सरीरभोगे भवोघे य ॥ मूलारा. ६५६, ६५७.

५. वेणइयस्स पढमया कहा उ अक्खेवणी कहेयव्वा । तो ससमयगहियत्थे कहिज्ज विक्खेवणी पच्छा ॥ अक्खेवणि अक्खित्ता जे जीवा ते लभंति सम्मत्तं । विक्खेवणीए भज्जा गाढतरागं च मिच्छत्तं ॥ अभि. रा. को. (धम्मकहा). ६. मु. गहिद-समयस्स ।

७. भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा । धम्माणुरागरत्तो य होइ जिणसासणे णिच्चं ॥ मूलारा. ७३७.

णिव्विदिगिच्छस्स भोगरइ-विरदस्स तव-सील-णियम-जुत्तस्स पच्छा विक्खेवणी कहा कहेयव्वा । एसा अकहा वि पण्णवयंतस्स परूवयंतस्स तदा कहा होदि[1] । तम्हा पुरिसंतरं पप्प समणेण कहा कहेयव्वा । पण्हादो हद-णट्ठ-मुट्ठि-चिंता-लाहालाह-सुह-दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराजय-णाम-दव्वाउ-संखं च परूवेदि । विवागसुत्तं[2] णाम अंगं एग-कोडि-चउरासीदि-लक्ख-पदेहि १८४००००० पुण्ण-पाव-कम्माणं विवायं वण्णेदि । एक्कारसंगाणं सव्व-पद-समासो चत्तारि कोडीओ पण्णारह लक्खा बे सहस्सं च ४१५०२००० । दिट्ठिवादो[3] णाम अंगं बारसमं । तस्य दृष्टिवादस्य स्वरूपं निरूप्यते- कौत्कल-काण्ठेविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-माद्धंपिक-रोमश-हारीत-मुण्ड-

....

रस हड्डीसे संसक्त होकर ही शरीरमें रहता है, उसी तरह जो जिनशासनमें अनुरक्त है, जिन-वचनमें जिसको किसी प्रकारकी विचिकित्सा नहीं रही है, जो भोग और रतिसे विरक्त है और जो तप, शील और नियमसे युक्त है. ऐसे पुरुषको ही पश्चात् विक्षेपणी कथाका उपदेश देना चाहिये । प्ररूपण करके उत्तमरूपसे ज्ञान करानेवालेके लिये यह अकथा भी तब कथारूप हो जाती है । इसलिये योग्य पुरुषको प्राप्त करके ही साधुको कथाका उपदेश देना चाहिये । यह प्रश्नव्याकरण नामका अंग प्रश्नके अनुसार हत, नष्ट, मुष्टि, चिंता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्याका भी प्ररूपण करता है । विपाक-सूत्र नामका अंग एक करोड़ चौरासी लाख पदोंके द्वारा पुण्य और पापरूप कर्मोंके फलोंका वर्णन करता है । ग्यारह अंगोंके कुल पदोंका जोड़ चार करोड़ पन्द्रह लाख दो हजार पद है । दृष्टिवाद नामका बारहवां अंग है । आगे उसके स्वरूपका निरूपण करते हैं– दृष्टिवाद नामके अंगमें कौत्कल, काण्ठेविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड और अश्वलायन आदि क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी मतोंका, मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति,

....

अस्थीनि च कीकसानि मिज्जा च तन्मध्यवर्त्ती धातुरस्थिमिज्जास्ताः प्रेमानुरागेण सर्वज्ञप्रवचनप्रीतिरूपकुसुम्भादिरागेण रक्ता इव रक्ता येषां ते तथा । अथवाऽस्थिमिज्जासु जिनशासनगतप्रेमानुरागेण रक्ता ये ते अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता । भग. २. ५. १०६ (टिका).

१. परसमओ उभयं वा सम्मद्दिट्ठिस्स ससमओ जेणं ।। तो सव्वज्झयणाइं ससमयवत्तव्वनिययाइं ।। मिच्छत्तमयसमूहं सम्मत्तं जं च तदुवगारम्मि । वट्टइ परसिद्धंतो तो तस्स तओ ससिद्धंतो ।। वि. भा. ९५६,९५७.

२. शुभाशुभकर्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयफलदानपरिणतिरूपः उदयो विपाकः, तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रम् । गो. जी., जी. प्र., टी. ३५७. विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जंति । × × । सम. सू. १४६.

३. दृष्टीनां त्रिषष्टयुत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादोऽनुवादः, तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद्दृष्टिवादं नाम । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६०. दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जंति । से समासओ

अश्वलायनादीनां क्रियावाद-दृष्टीनामशीतिशतम्, मरीचिकपिलोलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलि-माठर-मौद्गल्यायनादीनामक्रियावाददृष्टीनां चतुरशीतिः, शाकल्य-वल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कण्व-माध्यंदिन-मोद-पैप्पलाद-बादरायण-स्वेष्टकृदैति-कायन-वसु-जैमिन्यादीनामज्ञानिकदृष्टीनां सप्तषष्टिः, वशिष्ठ-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मीकि-रोमहर्षणी-सत्यदत्त-व्यासैलापुत्रौपमन्यवैन्द्रदत्तायस्थूणादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत्[1]। एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिषष्टयुत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते।

एत्थ किमायारादो, एवं पुच्छा सव्वेसिं। णो आयारादो, एवं वारणा सव्वेसिं, दिट्ठिवादादो। तस्स उवक्कमो पंचविहो- आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थ आणुपुव्वी तिविहा– पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि।

वाद्बलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावादियोंके चौरासी मतोंका, शाकल्य, वल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यंदिन, मोद, पैप्पलाद, बादरायण स्वेष्टकृत्, ऐतिकायन वसु और जैमिनी आदि अज्ञानवादियोंके सरसठ मतोंका तथा वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यु ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिकवादियोंके बत्तीस मतोंका वर्णन और निराकरण किया गया है। पूर्वमें कहे हुए क्रिया-वादी आदिके कुल भेद तीनसौ त्रेसष्ठ होते हैं।

इस शास्त्रमें क्या आचारांगसे प्रयोजन है, क्या सूत्रकृतांगसे प्रयोजन है, इस तरह बारह अंगोंके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। और इस तरह पूछे जाने पर यहां पर न तो आचारांगसे प्रयोजन है, न सूत्रकृतांग आदिसे प्रयोजन है इस तरह सबका निषेध करके यहां पर दृष्टिवाद अंगसे प्रयोजन है ऐसा उत्तर देना चाहिये। उसका उपक्रम पांच प्रकारका है– आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। इनमेंसे पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर बारहवें

पंचविहे, परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया। परिकम्मे सत्तविहे × × ×। सुत्ताइं अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइं × × ×। पुव्वगयं चउद्दसविहं पन्नत्तं। अणुओगे दुविहे पन्नत्ते × × ×। जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं सेत्तं चूलियाओ। सम. सू. १४७.

१. कौत्कलकांडेविद्धिकौशिकहरिश्मश्रुमांछयिकरोमसहारीतमुंडाश्वलायलादीनां क्रियावाददृष्टीनामशीतिशतं। मरीचकुमारकपिलोलूकगार्ग्यव्याघ्रभूतिवाद्वलिमाठरमौद्गल्यायनादीनामक्रियावाददृष्टीनां चतुरशीतिः। शाकल्यवल्कलकुथुमिसात्यमुद्गिनारायणकंठमाध्यंदिनमोदपैप्पलादवादरायणांबष्टीकृदैरिकायनवसुजैमिन्यादीनामज्ञानकुदृष्टीनां सप्तषष्टिः। वशिष्ठपाराशरजतुकीर्णवाल्मीकिरोमहर्षिसत्यदत्तव्यासैलापुत्रोपमन्यवैन्द्रदत्तायस्थूणादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत्। त. रा. वा. पृ. ५१. ' काणेविद्धि ' स्थाने ' कंठेविद्धि ', ' मांद्धपिक ' स्थाने ' माधंपिक ', ' कण्व ' स्थाने ' कठ ', ' स्वेष्टकृत् ' स्थाने ' स्विष्ठिक्य ', जतुकर्ण ' स्थाने ' जतुष्कर्ण ', ' अयस्थूण ' स्थाने ' अगस्त्य ' पाठा उपलभ्यन्ते। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६०.

एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे बारसमादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पढमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दिट्ठिवायादो। णामं– दिट्ठीओ वददीदि दिट्ठिवादं ति गुणणामं। पमाणं- अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो अणंतं। वत्तव्वदा– तदुभयवत्तव्वदा। तस्स पंच अत्थाहियारा हवंति– परियम्म[1]-सुत्त[2]-पढमाणियोग[3]-पुव्वगय[4]-चूलिया[5] चेदि। जं तं परियम्मं तं पंचविहं। तं जहा– चंदपण्णत्ती सूरपण्णत्ती जंबूदीवपण्णत्ती दीवसायरपण्णत्ती वियाहपण्णत्ती चेदि। तत्थ चंदपण्णत्ती[6] णाम छत्तीस-लक्ख-पंच-पद-सहस्सेहि ३६०५००० चंदाउ-परिवारिद्धि-गइ-बिंबुस्सेह-

---

अंगसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनने पर पहलेसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनने पर दृष्टिवाद अंगसे प्रयोजन है।

नाम–– इसमें अनेक दृष्टियोंका वर्णन किया गया है, इसलिये इसका 'दृष्टिवाद' यह गौण्यनाम है।

प्रमाण–– अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोग आदिकी अपेक्षा संख्यातप्रमाण और अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है।

वक्तव्यता–– इसमें तदुभयवक्तव्यता है।

उस दृष्टिवादके पांच अधिकार हैं– परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। उनमेंसे चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति इस तरह परिकर्मके पांच भेद हैं।

चन्द्रप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म छत्तीस लाख पांच हजार पदोंकेद्वारा चन्द्रमाकी आयु,

---

१. परितः सर्वतः कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६१.

२. सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रम्। जीवः अबंधकः अकर्ता निर्गुणः अभोक्ता स्वप्रकाशकः परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः नास्त्येव जीवः इत्यादिक्रियाक्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीनां मिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६१.

३. प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः। चतुर्विंशतितीर्थंकरद्वादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवप्रतिवासुदेवरूपत्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानि वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

४. इह तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्तनकाले गणधरान् सकलश्रुतार्थावगाहनसमर्थानधिकृत्य पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते, ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते। गणधराः पुनः सूत्ररचनां विदधतः आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्ति वा। अन्ये तु व्याचक्षते, पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते गणधरा अपि पूर्वं पूर्वगतसूत्रं विरचयन्ति पश्चादाचारादिकम्। न. सू. पृ. २४०.

५. सूइदत्थाणं विसेसपरूविया चूलिया णाम। धवला. अ. पृ. ५७३. दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोगेऽनुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयः। नं. सू. पृ. २४६.

६. चन्द्रप्रज्ञप्तिः चन्द्रस्य विमानायुःपरिवारऋद्धिगमनहानिवृद्धिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२

वण्णणं कुणइ । सूर-पण्णत्ती[1] पंच-लक्ख-तिण्णि-सहस्सेहि ५०३००० सूरस्सायु-भोगोवभोग-परिवारिद्धि-गइ-बिंबुस्सेह-दिण-किरणुज्जोव-वण्णणं कुणइ । जंबूदीव पण्णत्ती[2] तिण्णि-लक्ख-पंचवीस-पद-सहस्सेहि ३२५००० जंबूदीवे णाणाविह-मणुयाणं भोग-कम्म-भूमियाणं अण्णेसिं च पव्वद-दह णइ-वेइया-वंसावासाकट्टिम[3]-जिणहरादीणं वण्णणं कुणइ । दीवसायरपण्णत्ती[4] बावण्ण-लक्ख-छत्तीस-पद-सहस्सेहि ५२३६००० उद्धार-पल्ल-पमाणेण दीव-सायर-पमाणं अण्णं पि दीव-सायरंतब्भूदत्थं बहु-भेयं वण्णेदि । वियाहपण्णत्ती[5] णाम चउरासिदी-लक्ख-छत्तीस-पद-सहस्सेहि ८४३६००० रूवि-अजीव-दव्वं अरूवि-अजीव-दव्वं भवसिद्धिय-अभवसिद्धिय-रासिं च वण्णेदि । सुत्तं अट्ठासीदि-लक्ख-पदेहि ८८००००० अबंधओ अलेवओ[6] अकत्ता अभोत्ता णिग्गुणो सव्वगओ अणुमेत्तो णत्थि जीवो जीवो चेव अत्थि पुढवियादीणं समुदएण जीवो

परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्बकी उंचाई आदिका वर्णन करता है । सूर्यप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म पांच लाख तीन हजार पदोंकेद्वारा सूर्यकी आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति, बिम्बकी उंचाई, दिनकी हानि-वृद्धि, किरणोंका प्रमाण और प्रकाश आदिका वर्णन करता है । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म तीन लाख पच्चीस हजार पदोंकेद्वारा जम्बूद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए नाना प्रकारके मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदिका और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष, आवास, अकृत्रिम जिनालय आदिका वर्णन करता है । द्वीपसागरप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदोंके द्वारा उद्धारपल्यसे द्वीप और समुद्रोंके प्रमाणका तथा द्वीपसागरके अन्तर्भूत नाना प्रकारके दूसरे पदार्थोंका वर्णन करता है । व्याख्याप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म चौरासी लाख छत्तीस हजार पदोंके द्वारा रूपी अजीवद्रव्य अर्थात् पुद्‌गल, अरूपी अजीवद्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल, भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव, इन सबका वर्णन करता है,

दृष्टिवाद अंगका सूत्र नामका अर्थाधिकार अठासी लाख पदोंकेद्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, अणुप्रमाण ही है, जीव नास्तिस्वरूप ही है, जीव अस्तिस्वरूप ही है, पृथिवी आदिक पांच भूतोंके समुदायरूपसे जीव उत्पन्न होता है, चेतना रहित है, ज्ञानके विना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है,

---

१. सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणादीन् वर्णयति । गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३६२.

२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपगतमेरुकुलशैलहृदवर्षकुंडवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीन् वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

३. मु. वेइयाणं वस्सा-।

४ द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेषु विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीन् वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

५. रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अनंतरसिद्धपरस्परासिद्धानां अन्यवस्तूनां च वर्णनं करोति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२. ६. मु. अवलेवओ ।

उप्पज्जइ णिच्चेयणो णाणेण विणा सचेयणो णिच्चो अणिच्चो अप्पेति वण्णेदि। तेरासियं[1] णियदिवादं[2] विण्णाणवादं[3] सद्दवादं[4] पहाणवादं[5] दव्ववादं[6] पुरिसवादं[7] च वण्णेदि। उत्तं च—

इत्यादि रूपसे क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियोंके तीनसौ त्रेसठ मतोंका पूर्वपक्षरूपसे वर्णन करता है। यह त्रैराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद, और पुरुषवादका भी वर्णन करता है। कहा भी है—

१. तेरासिय (त्रैराशिकः) गोशालप्रवर्तिता आजीविकाः पाखण्डिनस्त्रैराशिका उच्यन्ते। कस्मादिति चेदुच्यते, इह ते सर्वं वस्तु त्र्यात्मकमिच्छन्ति। तद्यथा, जीवोऽजीवो जीवाजीवश्च, लोक अलोका लोकालोकाश्च, सदसत्सदसत्। नयचिन्तायामपि त्रिविधं नयमिच्छन्ति। तद्यथा, द्रव्यास्तिकं पर्यायास्तिकसुभयास्तिकं च। ततस्त्रिभी राशिभिश्चरन्तीति त्रैराशिकाः। नं. सू. पृ. २३९.

२. णियतिवाद (दैववादः) जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा। तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु॥ गो. क. ८८२. ये तु नियतिवादिनस्ते ह्येवमाहुः, नियतिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यद्वशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव रूपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा। तथाहि, यद्यदा यतो भवति तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यभावव्यवस्था प्रतिनियतव्यवस्था च न भवेत् नियामकाभावात्। तत एवं कार्यनैयत्यतः प्रतीयमानामेनां नियतिं को नाम प्रमाणपथकुशलो बाधितुं क्षमते? मा प्रापदन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघातप्रसङ्गः। अभि. रा. को. (णियइ).

३. विण्णाणवाद (विज्ञानाद्वैतवादः) प्रतिभासमानस्याशेषस्य वस्तुनो ज्ञानस्वरूपान्तःप्रविष्टत्वप्रसिद्धेः संवेदनमेव पारमार्थिकं तत्त्वम्। तथाहि, यदवभासते तज्ज्ञानमेव यथा सुखादि, अवभासन्ते च भावा इति। × × × तथा यद्वेद्यते तद्धि ज्ञानादभिन्नम् यथा विज्ञानस्वरूपम्, वेद्यन्ते च नीलादय इत्यतोऽपि विज्ञानाद्वैतसिद्धिरिति। न्या. कु. च. पृ. ११९. बाह्यार्थनिरपेक्षं ज्ञानाद्वैतमेव ये बौद्धविशेषा मन्वते ते विज्ञानवादिनः। तेषां राद्धान्तो विज्ञानवादः। अभि. रा. को. (विण्णाणवाद).

४. सद्दवाद (शब्दब्रह्मवादः) सकलं योगजमयोगजं वा प्रत्यक्षं शब्दब्रह्मोल्लेख्येवावभासते बाह्याध्यात्मिकार्थेषूत्पद्यमानस्यास्य शब्दानुविद्धत्वेनैवोत्पत्तेः, तत्संस्पर्शवैकल्ये प्रत्ययानां प्रकाशमानताया दुर्घटत्वात्। वाग्रूपता हि शाश्वती प्रत्यवमर्शिनी च, तदभावे तेषां नापरं रूपमवशिष्यते। न्या. कु. च. पृ. १३९, १४०.

५. पहाणवाद (प्रधानवादः) सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानम्। प्रधानस्य वादः प्रधानवादः सांख्यवाद इत्यर्थः। सांख्यानां हि पुमर्थापेक्षप्रकृतिपरिणाम एव लोकः। अभि. रा. को. (पहाणकड).

६. दव्ववाद (द्रव्यैकान्तवादी नित्यवादः) यत्कापिलं दर्शनं सांख्यमतं एतद् द्रव्यास्तिकनयस्य वक्तव्यम्। तदुक्तम्, जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं। स. त. ३, ४८.

७. पुरिसवाद (पौरुषवादः) आलसड्ढो णिरुच्छाहो फलं किंचि ण भुंजदे। थणक्खीरादिपाणं वा पउरुसेण विणा ण हि॥ गो. क. ८९०. अथवा, पुरिसवाद पुरुषाद्वैतवादः– एक्को चेव महप्पा पुरिसो देवो य सव्ववावी य। सव्वंगणिगूढो वि य सचेयणो णिग्गुणो परमो॥ गो. क. ८८१. पुरुष एवैकः सकललोकस्थितिसर्गप्रलयहेतुः प्रलयेऽप्यलुप्तज्ञानातिशयशक्तिरिति। तथा चोक्तम्, ऊर्णनाभ इवांशूनां चन्द्रकान्त इवाम्भसाम्। प्ररोहाणामिव प्लक्षः स हेतुः सर्वजन्मिनाम्॥ इति। तथा 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्' इत्यादि मन्वानानां वादः पुरुषवादः। अभि. रा. को. (पुरिसवाइ).

अट्ठासी[1]-अहियारेसु चउण्हमहियारणमत्थणिद्देसो[2] ।
पढमो अबंधयाणं विदियो तेरासियाण बोद्धवो ॥ ७६ ॥
तदियो य णियइ-पक्खे हवइ चउत्थो ससमयम्मि ॥

पढमाणियोगो पंच-सहस्स-पदेहि ५००० पुराणं वण्णेदि । उत्तं च—

बारसविहं पुराणं जगदिट्ठं[3] जिणवरेहि सव्वेहिं ।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य ॥ ७७ ॥
पढमो अरहंताणं विदियो पुण चक्कवट्टि-वंसो दु ।
विज्जहराणं तदियो चउत्थयो वासुदेवाणं ॥ ७८ ॥
चारण-वंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्ण-समणाणं ।
सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो ॥ ७९ ॥
णवमो य इक्खुयाणं दसमो वि य कासियाण बोद्धवो ।
वाईणेक्कारसमो बारसमो णाह-वंसो दु ॥ ८० ॥

पुव्वगयं पंचाणउदि-कोडि-पण्णास-लक्ख-पंच-पदेहि ९५५०००००५ उप्पाय-

---

इस सूत्र नामक अर्थाधिकारके अठासी अधिकारोंमेंसे चार अधिकारोंका अर्थनिर्देश मिलता है । उनमें पहला अधिकार अबन्धकोंका दूसरा त्रैराशिकवादियोंका, तीसरा नियतिवादका समझना चाहिये । तथा चौथा अधिकार स्वसमयका प्ररूपक है ॥ ७६ ॥

दृष्टिवाद अंगका प्रथमानुयोग अर्थाधिकार पांच हजार पदोंके द्वारा पुराणोंका वर्णन करता है । कहा भी है—

जिनेन्द्रदेवने जगतमें बारह प्रकारके पुराणोंका उपदेश दिया है । वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंशोंका वर्णन करते हैं । पहला अरिहंत अर्थात् तीर्थंकरोंका, दूसरा चक्रवर्तियोंका, तीसरा विद्याधरोंका, चौथा नारायण, प्रतिनारायणोंका, पांचवां चारणोंका, छठवां प्रज्ञाश्रमणोंका वंश है । तथा सातवां कुरुवंश, आठवां हरिवंश, नववां इक्ष्वाकुवंश, दशवां काश्यपवंश, ग्यारहवां वादियोंका वंश और बारहवां नाथवंश है ॥ ७७–८० ॥

दृष्टिवाद अंगका पूर्वगत नामका अर्थाधिकार पंचानवे करोड़ पचास लाख और पांच पदोंद्वारा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदिका वर्णन करता है ।

---

१. सुत्ताइं अट्ठासीति भवंति । तं जहा, उजुगं परिणयापरिणयं बहुभंगियं विप्पच्चइयं विनयचरियं अणंतरं परंपरं समाणं संजूहं (मासाणं) संभिन्नं अहाच्चयं (अहव्वायं नन्द्यां) सोवत्थि (वत्तं यं) नंदावत्तं बहुलं पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवंभूयं दुआवत्तं वत्तमाणप्पयं समभिरूढं सव्वओभद्दं पणाम (पस्सासं नंदा) दुपडिग्गहं इच्चेयाइं बावीसं ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमयसुत्तपरिवाडीए इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नछेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठासीति सुत्ताइं भवंति । सम. सू. १४७.

२. मु. मत्थि णिद्देसो ।

३. ' जं दिट्ठं ' इति पाठः प्रतिभाति ।

व्वय-धुवत्तादीणं वण्णणं कुणइ । चूलिया पंचविहा– जलगया थलगया मायागया रूवगया आगासगया चेदि । तत्थ जलगया दो-कोडि-णव-लक्ख-एऊण-णवुइ-सहस्स-बे-सद-पदेहि २०९८९२०० जलगमण–जलत्थंभण–कारण–मंत–तंत–तवच्छरणाणि वण्णेदि[1] । थलगया णाम तेत्तिएहि चेव पदेहि २०९८९२०० भूमि-गमण-कारण-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वत्थु-विज्जं भूमि-संबंधमण्णं पि सुहासुह-कारणं वण्णेदि[2] । मायागया तेत्तिएहि चेय पदेहि २०९८९२०० इंद-जालं वण्णेदि[3] । रूवगया तेत्तिएहि चेय पदेहि २०९८९२०० सीह-हय-हरिणादि-रूवायारेण परिणमण-हेदु-मंत-तंत-तवच्छरणाणि चित्त-कट्ठ-लेप्प-लेण-कम्मादि-लक्खणं च वण्णेदि[4] । आयासगया णाम तेत्तिएहि चेय पदेहि २०९८९२०० आगास-गमण-णिमित्त-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वण्णेदि[5] । चूलिया-सव्व-पद-समासो-दस-कोडीओ एगूण-पंचास-लक्ख-छायाल सहस्स-पदाणि १०४९४६००० ।

जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगताके भेदसे चूलिका पांच प्रकारकी है । उनमेंसे, जलगता चूलिका दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दोसौ पदोंद्वारा जलमें गमन और जलस्तम्भनके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चर्यारूप अतिशय आदिका वर्णन करती है । स्थलगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा पृथिवीके भीतर गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणरूप आश्चर्य आदिका तथा वास्तुविद्या और भूमिसंबन्धी दूसरे शुभ-अशुभ कारणोंका वर्णन करती है। मायागता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा (मायारूप) इन्द्रजाल आदिके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है । रूपगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा सिंह, घोड़ा और हरिणादि के स्वरूपके आकाररूपसे परिणमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका तथा चित्रकर्म, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म और लेनकर्म आदिके लक्षणका वर्णन करती है । आकाशगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा आकाशमें गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है। इन पांचो ही चूलिकाओंके पदोंका जोड़ दश करोड़ उनचास लाख

१. जलगता चूलिका जलस्तम्भनजलगमनाग्निस्तम्भाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्र-तपश्चरणादीन् वर्णयति । गो. जी.,जी. प्र., टी. ३६२.

२. स्थलगता चूलिका मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

३. मायागता चूलिका मायारूपेन्द्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति ।
गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

४. रूपगता चूलिका सिंहकरितुरगरुरुनरतरुहरिणशशकवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्र-तपश्चरणादीन् चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादींश्च वर्णयति ।
गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

५. आकाशगता चूलिका आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति ।
गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.

एत्थ किं परियम्मादो, किं सुत्तादो ? एवं पुच्छा सव्वेसिं। णो परियम्मादो, णो सुत्तादो, एवं वारणा सव्वेसिं। पुव्वगयादो। तस्स उवक्कमो पंचविहो, आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थाणुपुव्वी तिविहा, पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि। एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे चउत्थादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे विदियादो, जत्थतथाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पुव्वगयादो। पुव्वाणं गयं पत्त-पुव्व-सरूवं वा पुव्वगयमिदि गुणणामं। अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो पुण अणंतं। वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा। अत्थाधियारो चोद्दसविहो। तं जहा– उत्पादपूर्वं अग्रायणीयं वीर्यानुप्रवादं अस्तिनास्तिप्रवादं ज्ञानप्रवादं सत्यप्रवादं आत्मप्रवादं कर्मप्रवादं प्रत्याख्याननामधेयं विद्यानुप्रवादं कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं लोकबिन्दुसारमिति।

तत्थ उप्पादपुव्वं[1] दसण्हं वत्थूणं १० बे-सद-पाहुडाणं २०० कोडि-पदेहि

छयालीस हजार पद है।

इस जीवस्थान शास्त्रमें क्या परिकर्मसे प्रयोजन है? क्या सूत्रसे प्रयोजन है ? इस तरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहां पर परिकर्मसे प्रयोजन नहीं है, सूत्रसे प्रयोजन नहीं है इस तरह सबका निषेध करके यहां पर पूर्वगतसे प्रयोजन है ऐसा उत्तर देना चाहिये। उसका उपक्रम पांच प्रकारका है– अनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। उनमेंसे, पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पूर्वानुपूर्वीसे गिननेपर चौथे भेदसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिननेपर दूसरे भेदसे और यथातथानुपूर्वीसे गिननेपर पूर्वगतसे प्रयोजन है जो पूर्वोंको प्राप्त हो, अथवा जिसने पूर्वोंके स्वरूपको प्राप्त कर लिया हो उसे पूर्वगत कहते है। इसतरह 'पूर्वगत' यह गौण्यनाम है। वह अक्षर, पद, संघात प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्त-प्रमाण है। तीनों वक्तव्यताओंमेंसे यहां स्वसमयवक्तव्यता समझना चाहिये। अर्थाधिकारसे चौदह भेद हैं। वे ये हैं– उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुप्रवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुप्रवादपूर्व, कल्याणवादपूर्व, प्राणावायपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिन्दुसारपूर्व।

उनमेंसे, उत्पादपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंके एक करोड़ पदोंद्वारा जीव, काल

---

१. वस्तुनः द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकमुत्पादपूर्वम्। तच्च, जीवादिद्रव्याणां नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवन्ति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवविधम्, उत्पन्नं उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमानं नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत् स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवन्ति। उत्पादादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति। गो.जी., जी. प्र.,टी. ३६६.

१०००००० जीव-काल-पोग्गलाणमुप्पाद-व्वय-धुवत्तं वण्णेइ । अग्गेणियं णाम पुव्वं चोद्दसण्हं वत्थूणं १४ बे-सयासीदि-पाहुडाणं २८० छण्णउइ-लक्ख-पदेहि ९६००००० अंगाणमग्गं वण्णेइ[1] । वीरियाणुपवादं णाम पुव्वं अट्ठण्णं वत्थूणं ८ सट्ठि-सय-पाहुडाणं १६० सत्तरि-लक्ख-पदेहि ७०,००००० अप्प-विरियं पर-विरियं उभय-विरियं खेत्त-विरियं भव-विरियं तव-विरियं वण्णेइ[2] । अत्थिणत्थिपवादं णाम पुव्वं अट्ठारसण्हं वत्थूणं १८ सट्ठि-ति-सद-पाहुडाणं ३६० सट्ठि-लक्ख-पदेहि ६०,००००० जीवाजीवाणं अत्थि-णत्थित्तं वण्णेदि[3] । तं जहा– जीवः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः स्यादस्ति, परद्रव्य-क्षेत्रकालभावैः स्यान्नास्ति, ताभ्यामक्रमेणादिष्टः स्यादवक्तव्यः, प्रथमद्वितीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यादस्ति च नास्ति च, प्रथमतृतीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, द्वितीयतृतीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, प्रथम-

और पुद्गल द्रव्यके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका वर्णन करता है । (अग्र अर्थात् द्वादशांगोंमें प्रधानभूत वस्तुके अयन अर्थात् ज्ञानको अग्रायण कहते हैं, और उसका कथन करना जिसका प्रयोजन हो उसे अग्रायणीयपूर्व कहते हैं ।) यह पूर्व चौदह वस्तुगत दोसौ अस्सी प्राभृतोंके छ्यानवे लाख पदों द्वारा अंगोंके अग्र अर्थात् परिमाणका कथन करता है । वीर्यानुप्रवादपूर्व आठ वस्तुगत एकसौ साठ प्राभृतोंके सत्तर लाख पदों द्वारा आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य और तपवीर्यका वर्णन करता है । अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व अठारह वस्तुगत तीनसौ साठ प्राभृतोंके साठ लाख पदोंद्वारा जीव और अजीवके अस्तित्व और नास्तित्वधर्मका वर्णन करता है । जैसे जीव, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और,स्वभावकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूप है । परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा कथंचित् नास्तिरूप है । जिस समय वह स्वद्रव्यचतुष्टय और परद्रव्यचतुष्टयद्वारा अक्रमसे अर्थात् युगपत् विवक्षित होता है उस समय स्यादवक्तव्यरूप है । स्वद्रव्यादिरूप प्रथमधर्म और परद्रव्यादिरूप द्वितीयधर्मसे जिस समय क्रमसे विवक्षित होता है उससमय कथंचित् अस्ति-नास्तिरूप है । स्यादस्तिरूप प्रथम धर्म और स्याद-वक्तव्यरूप तृतीय धर्मसे जिस समय विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्ति-अवक्तव्यरूप है । स्यान्नास्तिरूप द्वितीय धर्म और स्यादवक्तव्यरूप तृतीय धर्मसे जिस समय क्रमसे विवक्षित होता है उस समय कथंचित् नास्ति-अवक्तव्यरूप है । स्यादस्तिरूप प्रथम धर्म, स्यान्नास्तिरूप

१. अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानं अग्रायणं, तत्प्रयोजनमग्रायणी[illegible] । तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. [illegible]६६. अग्रं परिमाणं तस्यायनं गमनं परिच्छेदनमित्यर्थः । तस्मै हितमग्रायणीयं, सर्वद्रव्यादिपरिमाणपरि[illegible]कारीति भावार्थः । नं. सू. पृ. २४१.

२. वीर्यस्य जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्यानुवदनमनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीय पूर्वम् । तच्च आत्मवीर्यपरवीर्योभयवीर्यक्षेत्रकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति ।
गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

३. अस्ति नास्ति इत्यादिधर्माणां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं नाम चतुर्थं पूर्वम् ।
गो. जी., जी. प्र. टी. ६६६.

द्वितीयतृतीयधर्मैः क्रमेणादिष्टः स्यादिस्त च नास्ति चावक्तव्यश्च जीव इति। एवमजीवादयोऽपि वक्तव्याः। णाणपवादं णाम पुव्वं बारसण्हं वत्थूणं १२ वि-सद-चालीस-पाहुडाणं २४० एगूण-कोडि-पदेहि ९९९९९९ पंच णाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि वण्णेदि[1]। दव्वट्ठिय-पज्ज-वट्ठिय-णयं पडुच्च अणादिअणिहण-अणादि-सणिहण-सादिअणिहण-सादिसणिहण-णाणादि[2] वण्णेदि-णाणं णाणसरूवं च वण्णेदि।

सच्चपवादं णाम पुव्वं बारसण्हं वत्थूणं १२ दु-सय-चालीस-पाहुडाणं २४० छहि अहिय-एग-कोडि-पदेहि १००००००६ वाग्गुप्तिः[3] वाक्संस्कारकारणं प्रयोगो द्वादशधा भाषा वक्तारश्च अनेक प्रकारं मृषाभिधानं दशप्रकारश्च सत्यसद्भावो यत्र निरूपितस्ततसत्यप्रवादम्। व्यलीकनिर्वृत्तिर्वाचां संयमत्वं वा वाग्गुप्तिः। वाक्संस्कार-कारणानि शिरःकण्ठादीन्यष्टौ स्थानानि। वाक्प्रयोगः शुभेतरलक्षणः सुगमः। अभ्याख्यानकलहपैशुन्याबद्धप्रलापरत्यरत्युपधिनिकृत्यप्रणतिमोषसम्यग्मिथ्यादर्शना-त्मिका भाषा द्वादशधा। अयमस्य कर्तेति अनिष्टकथनमभ्याख्यानम्। कलहः प्रतीतः।

द्वितीय धर्म और स्यादवक्तव्यरूप तृतीय धर्मसे जिससमय क्रमसे विवक्षित होता है उससमय कथंचित् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यरूप जीव है। इसी तरह अजीवादिकका भी कथन करना चाहिये। ज्ञानप्रवादपूर्व बारह वस्तुगत दोसौ चालीस प्राभृतोंके एककम एक करोड़ पदोंद्वारा पांच ज्ञान तीन अज्ञानोंका वर्णन करता है। तथा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-अनन्त, और सादि-सान्तरूप ज्ञानादि तथा इसी तरह ज्ञान और ज्ञानके स्वरूपका वर्णन करता है। सत्यप्रवादपूर्व बारह वस्तुगत दोसौ चालीस प्राभृतोंके एक करोड़ छह पदोंद्वारा वचनगुप्ति, वाक्संस्कारके कारण, वचनप्रयोग, बारह प्रकारकी भाषा, अनेक प्रकारके वक्ता, अनेक प्रकारके असत्यवचन और दश प्रकारके सत्यवचन इन सबका वर्णन करता है। असत्य नहीं बोलनेको अथवा वचनसंयम अर्थात् मौनके धारण करनेको वचनगुप्ति कहते है। मस्तक, कण्ठ, हृदय, जिह्वाका मूल, दांत, नासिका, तालु और ओठ ये आठ वचनसंस्कारके कारण हैं। शुभ और अशुभ लक्षणरूप वचनप्रयोगका स्वरूप सरल है। अभ्याख्यानवचन, कलहवचन, पैशून्यवचन, अबद्धप्रलापवचन, रतिवचन, अरतिवचन, उपधिवचन, निकृतिवचन अप्रणतिवचन, मोषवचन, सम्यग्दर्शनवचन और मिथ्यादर्शनवचनके भेदसे भाषा बारह प्रकारकी है। यह इसका कर्ता है इस तरह अनिष्ट कथन करनेको अभ्याख्यानभाषा कहते हैं। कलहका

---

१. ज्ञानानां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादम्। तच्च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पंच सम्यग्ज्ञानानि। कुमतिकुश्रुतविभंगाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसंख्याविषयफलानि आश्रित्य तेषां प्रामाण्या-प्रामाण्यविभागं च वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

२. मु. सादिसणिहणाणि।

३. इत आरभ्य सत्यप्रवादवर्णनान्तं यावत् समग्रपाठोऽविकलरूपेण तत्वार्थराजवार्तिके पृ. ५२ पंक्ति ८ तः आरभ्य २८ तमपंक्तिपर्यन्तः शब्दश उपलभ्यते।

पृष्ठतो दोषाविष्कारणं पैशुन्यम् । धर्मार्थकाममोक्षासम्बद्धा वागबद्धप्रलापः । शब्दादिविषयेषु रत्युत्पादिका रतिवाक् । तेष्वेवारत्युत्पादिकारतिवाक् । यां वाचं श्रुत्वा परिग्रहार्जनरक्षणादिष्वासज्यते सोपधिवाक् । वणिग्व्यवहारे यामवधार्य निकृतिप्रवणः आत्मा भवति स निकृतिवाक् । यां श्रुत्वा तपोविज्ञानाभ्यां[1] केष्वपि न प्रणमति साऽप्रणतिवाक् । यां श्रुत्वा स्तेये प्रवर्तते सा मोषवाक् । सम्यग्मार्गस्योपदेष्ट्री[2] सम्यग्दर्शनवाक् । तद्विपरीता मिथ्यादर्शनवाक् । वक्तारश्चाविष्कृतवक्तृपर्यायाः द्वीन्द्रियादयः । द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयमनेकप्रकारमनृतम् । दशविधः सत्यसद्भावः नाम-रूप-स्थापना-प्रतीत्य-संवृति-संयोजना-जनपद-देश-भाव-समय-सत्यभेदेन । तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यासत्यप्यर्थे संव्यवहारार्थं संज्ञाकरणं तन्नामसत्यम्, यथेन्द्र इत्यादि । यदर्थासन्निधानेऽपि रूपमात्रेणोच्यते तद्रूपसत्यम्, यथा चित्रपुरुषादिष्वसत्यपि चैतन्योपयोगादावर्थे पुरुष इत्यादि । असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थं स्थापितं द्यूताक्षादिषु तत्

अर्थ स्पष्ट ही है । (परस्पर विरोधके बढ़ानेवाले वचनोंकी कलहवचन कहते है ।) पीछेसे दोष प्रगट करनेको पैशून्यवचन कहते हैं । धर्म, अर्थ काम और मोक्षके संबन्धसे रहित वचनोंको अबद्धप्रलापवचन कहते हैं । इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें राग उत्पन्न करनेवाले वचनोंको रतिवचन कहते हैं । इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें अरतिको उत्पन्न करनेवाले वचनोंको अरतिवचन कहते हैं । जिस वचनको सुनकर परिग्रहके अर्जन और रक्षण करनेमें आसक्ति उत्पन्न होती है उसे उपधिवचन कहते हैं । जिस वचनको अवधारण करके जीव वाणिज्यमें ठगनेरूप प्रवृत्ति करनेमें समर्थ होता हैं उसे निकृतिवचन कहते हैं । जिस वचनको सुनकर तप और ज्ञानसे अधिक गुणवाले पुरुषोंमें भी जीव नम्रीभूत नहीं होता है उसे अप्रणतिवचन कहते हैं । जिस वचनको सुनकर चौर्यकर्ममें प्रवृत्ति होती है उसे मोषवचन कहते हैं । समीचीन मार्गका उपदेश देनेवाले वचनको सम्यग्दर्शनवचन कहते हैं । मिथ्यामार्गका उपदेश देनेवाले वचनको मिथ्यादर्शन वचन कहते हैं । जिनमें वक्तृपर्याय प्रगट हो गई है ऐसे द्वीन्द्रियसे आदि लेकर सभी जीव वक्ता हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा असत्य अनेक प्रकारका हैं । नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संवृतिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य और समयसत्यके भेदसे सत्यवचन दश प्रकारका है ।

मूल पदार्थके नहीं रहने पर भी सचेतन और अचेतन द्रव्यके व्यवहारके लिये जो संज्ञा की जाती है उसे नामसत्य कहते हैं । जैसे, ऐश्वर्यादि गुणोंके न होने पर भी किसीका नाम 'इन्द्र' ऐसा रखना नामसत्य है । पदार्थके नहीं होने पर भी रूपकी मुख्यतासे जो वचन कहे जाते हैं उसे रूपसत्य कहते हैं । जैसे, चित्रलिखित पुरुष आदिमें चैतन्य और उपयोगादिकरूप अर्थके नहीं रहने पर भी 'पुरुष' इत्यादि कहना रूपसत्य है । मूल पदार्थके नहीं

---

१. 'तपोविज्ञानाधिकेष्वपि' इति पाठः । त. रा. वा. पृ. ५२.

२. मु. सम्यग्मार्गोपदेष्ट्री ।

स्थापनासत्यम् । साद्यनादीन् भावान्[1] प्रतीत्य यद्वचस्तत्प्रतीत्यसत्यम् । यल्लोके संवृत्याश्रितं वचस्तत्संवृतिसत्यम्, यथा पृथिव्याद्यनेककारणत्वेऽपि सति पङ्के जातं पङ्कजमित्यादि । धूपचूर्णवासानुलेपनप्रघर्षादिषु पद्ममकरहंससर्वतोभद्रक्रौञ्चव्यूहादिषु इतरेतरद्रव्याणां[2] यथाविभागविधिसन्निवेशाविर्भावकं यद्वचस्तत्संयोजनासत्यम् । द्वात्रिंशज्जनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु ,धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकं यद्वचस्तज्जनपदसत्यम् । ग्रामनगरराजगणपाखण्डजातिकुलादिधर्माणां व्यपदेष्टृ यद्वचस्तद्देशसत्यम् । छद्मस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य संयतासंयतस्य वा स्वगुणपरिपालनार्थं प्रासुकमिदमप्रासुकमिदमित्यादि यद्वचस्तद्भावसत्यम् । प्रतिनियतषट्तयद्रव्यपर्यायाणामागमगम्यानां याथात्म्याविष्कारणं यद्वचस्तत्समयसत्यम् ।

आदपवादं सोलसण्हं वत्थूणं १६ वीसुत्तर-ति-सय-पाहुडाणं ३२० छव्वीस-कोडि-पदेहि २६०००००००० आदं वण्णेदि वेदे त्ति वा विण्हु त्ति वा भोत्ते त्ति वा बुद्धे त्ति वा इच्चादि-सरूवेण । उक्तं च---

जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो ।
वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो ॥ ८१ ॥

रहने पर भी कार्यके लिये जो द्यूतसंबन्धी अक्ष (पांसा) आदिमें स्थापना की जाती है उसे स्थापनासत्य कहते हैं । सादि और अनादि भावोंकी अपेक्षा जो वचन बोला जाता है उसे प्रतीत्यसत्य कहते हैं । लोकमें जो वचन संवृति अर्थात् कल्पनाके आश्रित बोले जाते हैं उन्हें संवृतिसत्य कहते हैं । जैसे, पृथिवी आदि अनेक कारणोंके कहने पर भी जो पंक अर्थात् कीचड़में उत्पन्न होता है उसे पंकज कहते हैं इत्यादि । धूपके सुगन्धी चूर्णके अनुलेपन और प्रघर्षणके समय, अथवा पद्म, मकर, हंस, सर्वतोभद्र और क्रौंच आदिरूप व्यूहरचनाके समय सचेतन अथवा अचेतन द्रव्योंके विभागानुसार विधिपूर्वक रचनाविशेषके प्रकाशक जो वचन हैं उन्हें संयोजनासत्य कहते हैं । आर्य और अनार्यके भेदसे बत्तीस देशोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके प्राप्त करानेवाले वचनको जनपदसत्य कहते हैं । ग्राम, नगर, राजा, गण, पाखण्ड, जाति और कुल आदिके धर्मोंके उपदेश करनेवाले जो वचन हैं उन्हें देशसत्य कहते हैं । छद्मस्थोंका ज्ञान यद्यपि द्रव्यकी यथार्थताका निश्चय नहीं कर सकता हैं तो भी अपने गुण अर्थात् धर्मके पालन करनेके लिये यह प्रासुक है, यह अप्रासुक है इत्यादि रूपसे जो संयत और श्रावकके वचन हैं उन्हें भावसत्य कहते हैं । आगमगम्य प्रतिनियत छह प्रकारकी द्रव्य ओर उनकी पर्यायोंकी यथार्थताके प्रगट करनेवाले जो वचन हैं उन्हें समयसत्य कहते हैं ।

आत्मप्रवादपूर्व सोलह वस्तुगत तीनसौ बीस प्राभृतोंके छव्वीस करोड़ पदोंद्वारा जीव वेत्ता हैं, विष्णू है, भोक्ता है, बुद्ध है, इत्यादि रूपसे आत्माका वर्णन करता है । कहा भी है---

---

१. मु. साद्यनादीनौपशमिकादीन् भावान् ।

२. ' वा सचेतनेतरद्रव्याणां ' इति पाठः । त. रा. वा. पृ. ५२.

सत्ता जंतू य माणी य माई जोगी य संकडो ।
असंकडो[1] य खेत्तण्हु अंतरप्पा तहेव य[2] ॥ ८२ ॥

एदेसिमत्थो वुच्चदे । तं जहा– जीवदि जीविस्सदि पुव्वं जीविदो त्ति जीवो[3] । सुहमसुहं करेदि त्ति कत्ता[4] । सच्चमसच्चं संतमसंतं वददीदि वत्ता[5] । पाणा एयस्स संति त्ति पाणी[6] । अमर-णर-तिरिय-णारय-भेएण चउव्विहे संसारे कुसलमकुसलं भुजंदि त्ति भोत्ता[7] । छव्विह-संठाण-बहुविह-देहेहि[8] पूरदि गलदि त्ति पोग्गलो[9] । सुख-दुक्खं वेदेदि त्ति वेदो, वेत्ति जानातीति वा वेदः[10] । उपात्तदेहं व्याप्नोतीति विष्णुः[11] ।

जीव कर्ता है, वक्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुद्‌गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है, मानव है, सक्ता है, जन्तु है, मानी है, मायावी है, योगसहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है ॥ ८१–८२ ॥

आगे इन्हीं दोनों गाथाओंका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है– जीता है, जीवित रहेगा और पहले जीवित था, इसलिये जीव है । शुभ और अशुभ कार्यको करता है, इसलिये कर्ता है । सत्य-असत्य और योग्य-अयोग्य वचन बोलता है, इसलिये वक्ता है । इसके प्राण पाये जाते हैं इसलिये प्राणी है । देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकीके भेदसे चार प्रकारके संसारमें पुण्य और पापका भोग करता है, इसलिये भोक्ता है । छह प्रकारके संस्थान और नाना प्रकारके शरीरोंद्वारा पूर्ण करता है और गलाता है, इसलिये पुद्‌गल है । सुख और दुखका वेदन करता

---

१. ' वेदो ' स्थाने ' वेदी ', ' संकडो ' स्थाने ' संकुडो ', ' असंकडो ' स्थाने ' असंकुडो ' पाठः । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

२. गाथाद्वयान्तर्गताः ' च ' शब्दाः उक्तानुक्तसमुच्चयार्थाः वेदितव्याः । ततः कारणात् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्यादिसम्बधेन मूर्तः, निश्चयनयाश्रयेणामूर्तः इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयन्ते । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

३. जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणांश्च धारयति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

४. व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म, निश्चयेन चित्पर्यायांश्च करोतीति कर्ता। गो.जी.,जी. प्र.,टी. ३६६

५. व्यवहारनयेन सत्यमसत्यं च वक्तीति वक्ता, निश्चयेनावक्ता । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

६. नयद्वयोक्तप्राणाः सन्त्यस्येति प्राणी । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.

७. व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं, निश्चयेन स्वस्वरूपं च भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता । गो. जी., जी. प्र.. टी. ३६६.

८. मु. संठाणं ।

९. व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्‌गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्‌गलः, निश्चयेनापुद्‌गलः । गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६.

१०. नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति जानातीति वेदः । गो. जी.. जी. प्र. टी. ३६६.

११. व्यवहारेण स्वोपात्तदेहं समुद्घाते सर्वलोकं, निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः । गो. जी., जो. प्र. टी. ३६६.